CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3641

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3641

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय धर्म व्यवस्था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाचस्पति गैरोला

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद—१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय ...
क्र 3641
प्रा 2.4.68
State Museum, Library, ...
2.94
ग म

© : जनवरी, १९६२

विद्यार्थी संस्करण : ३·००

राज संस्करण : ४·००

प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन,

१५–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद

मुद्रक : पियरलेस प्रिंटर्स, इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

धर्म क्या है : १
धर्म की जीवन में आवश्यकता : २३
आचार और विचार : ३१
धर्म का महत्त्व : ४१
सनातन धर्म : ४६
वैदिक धर्म : ७६
जैन धर्म : ६४
बौद्ध धर्म : १४४
अन्य धर्मों की व्याख्या : १६५

परिशिष्ट

नारी धर्म : २०६
प्रमुख व्रत और त्योहार : २२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म क्या है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म क्या है

धर्म की परिभाषा

धर्म का स्वरूप जानने के लिए धर्म की परिभाषा को जान लेना आवश्यक है।

'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है धारण करना। धारण करना, अर्थात् रक्षा करना या बचा लेना। धर्म शब्द के इस अर्थ को लेकर हमारे शास्त्रकारों ने धर्म की अनेक परिभाषायें की हैं। उन सभी परिभाषाओं का एक ही सार है। वे परिभाषायें इस प्रकार है :

(१) गिरते हुए मनुष्य का आधार बन कर जो उसको धारण करता है या बचा लेता है अथवा उसकी रक्षा करता है, उसको 'धर्म' कहते हैं। धर्म पर ही यह सारा संसार टिका है और धर्म को ही समस्त संसार ने धारण किया है।

(२) जिसका सम्बन्ध किसी अनिष्ट या बुराई से नहीं है और जिसका फल सदा इष्ट या भलाई होता है वह धर्म है।

(३) जो सब को समान रूप से अभ्युदय की ओर ले जाय और सब को कल्याण का मार्ग दिखाये वही धर्म है।

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) जिस वाक्य के सुनने से, करने योग्य और न करने योग्य कार्यों का ज्ञान होता है वह वाक्य ही धर्म है।

(५) वेदादि शास्त्रों के जानने वाले और राग-द्वेष से रहित महापुरुषों ने जिस आचार का पालन किया है, वही धर्म है।

(६) संसार के दुःखों से बचाकर इस जीव को जो उत्तम सुख प्रदान करे वही धर्म है।

(७) वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार और अपना संतोष, ये चार मुख्य धर्म हैं। अर्थात् चारों वेद धर्म हैं। वेदों को जानने वाले लोगों की स्मृति (वाणी) और साधु पुरुषों का सदाचार तथा उनका आत्म-संतोष, ये सभी धर्म हैं।

(८) श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र) में कहे गये अचार का परिपालन करना ही धर्म है।

(९) अपने-अपने कर्मों को पूरे विश्वास के साथ करते रहना और परमेश्वर को ही सब कुछ मानना धर्म है।

धर्म एक मर्यादा है

हमारा रहन-सहन, आचार-विचार और आहार-व्यवहार कैसा होना चाहिए—इस मर्यादा को बताने वाला धर्म ही है। धर्म की मर्यादाओं के सम्बन्ध में जैन धर्म के तीर्थंकर महात्मा महावीर स्वामी ने कहा है :

'किसी भी प्राणी, किसी भी जीव और किसी भी सत्त्व को न मारना चाहिए; उस पर हुकूमत नहीं करनी चाहिए; दास या दासी बनाकर उसको पराधीन न करना चाहिए; और न किसी का अनिष्ट करना चाहिए। यही शुद्ध, सत्य और शाश्वत धर्म है।'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धर्म ही कल्याण है

हमारे धर्मग्रंथों में तथा धार्मिक महापुरुषों के उपदेशों में मनुष्य जीवन के लिए धर्म को इतना आवश्यक इसलिए बताया गया है कि, हर तरह से हमारा कल्याण हो। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था :

'हे भिक्षुओं, तुम लोक में ऐसे धर्म का उपदेश करो, जिसके आदि, मध्य और अन्त में कल्याण-ही-कल्याण हो।'

यही बात जैनधर्म के आचार्य गुणभद्र ने भी कही है 'धर्म, सुख और कल्याण का कारण है। कारण कभी भी अपने कार्य का विनाशक नहीं होता। इसलिए धर्म के परिपालन से आनन्द में बाधा पहुँचेगी, ऐसा तुम्हें सोचना ही नहीं चाहिए।'

धर्म आत्मा की वस्तु है

सात्त्विक आहार, अच्छे पुरुषों की संगति और उपासना आदि कार्यों से अपने-आप में पवित्रता का अनुभव होता है। यही सदाचार है और इसी को धर्म कहा गया है।

वस्तुतः देखा जाय तो सदाचार या धर्म के परिपालन से जो सन्तोष, सुख और आनन्द होता है उसका सम्बन्ध आत्मा से है, इसलिए सत्य श्रद्धा, सत्य आचरण और सत्य ज्ञान को ही धर्म कहा गया है। ये सभी बातें शुद्ध मनोवृत्ति से होती हैं और शुद्ध मनोवृत्ति का जन्म आत्मा से होता है। बाँस के बिना जैसे बाँसुरी नहीं बजती वैसे ही आत्मा की अनुभूति के बिना धर्म का होना संभव नहीं है।

धर्म अलौकिक है

अलौकिक उसको कहते हैं, जो लौकिक नहीं है। उस वस्तु को लौकिक कहते हैं, जो सर्व साधारण के द्वारा देखी तथा जानी जा सके, अथवा अनुमान लगाकर जिसका पता किया जा सके। अपने अनुभव,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयोग तथा अपनी आँख आदि इन्द्रियों से जिस वस्तु के अच्छे बुरे आदि गुण और छोटे-बड़े आदि धर्म जाने जा सकें वे वस्तुएँ लौकिक हैं।

इसके विपरीत अनुभव, प्रयोग तथा इन्द्रिय आदि के द्वारा जिनकी छान-बीन नहीं की जा सकती है वे वस्तुएँ अलौकिक हैं। आत्मा, ईश्वर, पूर्वजन्म, स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि धर्मशास्त्रों में कही गयी वस्तुएँ अनुभव और प्रयोग से बाहर होने के कारण अलौकिक हैं।

जिनकी दृष्टि दिव्य हो चुकी है, जो तीनों कालों (भूत-वर्तमान-भविष्य) के जानने वाले ऋषि, महात्मा, योगी, पैगम्बर और अवतार आदि हुए हैं उन्होंने उक्त अलौकिक वस्तुओं के बारे में जो कुछ कहा है वही सही है और वही धर्म है। उसी पर विश्वास करना चाहिए।

यही अलौकिक धर्म है। वही विश्व की छोटी-छोटी घटना के मूल में बैठा है। उसको कल्पना के द्वारा जाना जा सकता है। सब तरह से श्रेयस्कर होने के कारण उसको समस्त मानवता का धर्म कहा गया है।

देवस्थान मुनि द्वारा युधिष्ठिर को उत्तम धर्म का उपदेश

'महाभारत' के शांतिपर्व में देवस्थान मुनि द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर को जिस उत्तम धर्म का उपदेश दिया था उसका सारांश इस प्रकार है :

(१) किसी भी प्राणी से द्रोह न करके जिस धर्म का पालन होता है वही साधु पुरुषों की राय में उत्तम धर्म है।

(२) किसी से द्रोह न करना; सत्य बोलना; समस्त प्राणियों को यथायोग्य उनका हिस्सा देना; सबके लिए दयाभाव बनाये रखना; मन और इन्द्रियों का संयम बनाये रखना; अपनी ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पत्नी से संतान पैदा करना; और मृदुता, लज्जा एवं गंभीरता आदि गुणों को अपनाना, यही श्रेष्ठ धर्म है।

इसी श्रेष्ठ धर्म को स्वयंभुव मनु ने भी 'मनुस्मृति' में बताया है; और इसी का आचरण कर युधिष्ठिर ने धर्मयुद्ध को जीता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म के दस लक्षण

संसार की किसी भी वस्तु को हम या तो उसकी आकृति से पहचानते हैं, या उसके स्वरूप से अथवा उसके अंगों से। सींग, पूँछ, खुर, सिर और गले की शकल से हम पहचान जाते हैं कि यह 'गाय' है। इसी प्रकार पेंदी, विस्तार और मुँह की बनावट से हम पहचान जाते हैं कि यह 'घड़ा' हैं। इसलिए हम गाय को घड़ा और घड़े को गाय नहीं कह सकते।

इस उदाहरण से यह सिद्ध हुआ कि आकृति, या स्वरूप अथवा अंगों से किसी वस्तु की पहचान होती है। अतएव किसी वस्तु के स्वरूप को बताने वाले विशेष चिह्न ही उसके 'लक्षण' कहलाते हैं। जिस प्रकार गाय का स्वरूप जानने के लिए सींग, पूँछ आदि अंगों का जान लेना आवश्यक है उसी प्रकार धर्म का स्वरूप पहचानने के लिए, धर्म के दश लक्षणों को जान लेना आवश्यक है। धर्म के इन दस लक्षणों को 'मनुस्मृति' के एक श्लोक में इस प्रकार प्रकार गिनाया गया :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अर्थात् (१) धैर्य, (२) क्षमा, (३) दम (मन को रोकना), (४) अस्तेय (चोरी न करना), (५) शौच (बाहर-भीतर से शुद्धि), (६) इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), (७) धी (शास्त्रों का ज्ञान), (८) विद्या, (९) सत्य (सच बोलना) और (१०) अक्रोध (क्रोध न करना), धर्म के ये दस लक्षण हैं।

१ धैर्य

अनेक प्रकार की बाधाओं के आने पर भी आरंभ किये गये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किसी कार्य को अटल विश्वास के साथ पूरा करना ही 'धैर्य' है। धैर्य से मनुष्य को साहस, उत्साह और सफलता मिलती है।

विघ्न-बाधाओं के बीच भी जो व्यक्ति कार्य को पूरा करके ही चैन लेते हैं उन्हीं को श्रेष्ठ पुरुष या पुरुषसिंह कहा गया है। ऐसे धैर्यवान् पुरुष न तो निन्दा से घबराते हैं और न प्रशंसा से ही इतराते हैं। संपत्ति और विपत्ति, दोनों में समुद्र की तरह गम्भीर तथा पर्वत की तरह अचल बने रहना ही धैर्य धारण है। चाहे मृत्यु ही सामने क्यों न आ जाय, धर्म के मार्ग से विचलित न होने वाले व्यक्तियों को ही धैर्यशाली कहा गया है।

२ क्षमा

सुख-दुःख, हर्ष-शोक और मान-अपमान को अमृत के घूँट की तरह पी जाना ही 'क्षमा' है।

क्षमा, विवशता नहीं है। किसी बलवान् के आगे निर्बल मनुष्य का अपमान सह लेना क्षमा नहीं है। क्षमा, उदारता है। बलवान्, निर्बल के प्रति; धनवान्, निर्धनों के प्रति; विद्वान्, मूर्खों के प्रति और गुरु, शिष्यों के प्रति जिस उदारता का आचरण कर उनके सभी दोषों एवं अपराधों को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं वे ही क्षमाशील हैं।

क्षमा एक ऐसा शस्त्र है, जिससे बड़े-बड़े शूर-वीरों को वश में किया जा सकता है और इसी प्रकार असंभव कार्यों को सम्भव करके दिखाया जा सकता है।

सत्पुरुषों का क्षमा एक आभूषण है। जिस मनुष्य में क्षमा है उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। ऐसे क्षमाशील लोगों के शत्रु भी एक दिन मित्र बन जाते हैं।

महापुरुषों के महान् गुण क्षमा को, इसीलिए धर्म का एक लक्षण कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३ दम

इन्द्रियों का स्वामी मन है। उसको अपने वश में रखना ही 'दम' है।

दम, अर्थात् मन को एकाग्र (वश) करने पर ही योगी योगाभ्यास कर सकता है, कवि काव्यसृष्टि कर सकता है, चित्रकार चित्र बना सकता है, विद्यार्थी विद्या प्राप्त कर सकता है।

यदि मन को वश में न रखा जायगा तो इन्द्रियों की लोलुपता बढ़ेगी। वे सांसारिक विषयों में रमती जायेंगी और एक समय आयेगा, जब मनुष्य को जान से भी हाथ धोने पड़ेंगे।

शरीर के भीतर बैठा हुआ यह मन हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। वह इतना चंचल, हठी और बलवान् है कि वायु को भी वश में किया जा सकता है, मन को नहीं। इसलिए चंचल मन को वश में करने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनेक उपाय बताये थे।

मन को वश में करने से इन्द्रियाँ भी अपने-अपने कार्यों में लगी रहती हैं। इससे शांति, सुख, आनन्द और अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

इसीलिए मन का निग्रह, अर्थात् दम को, धर्म का एक लक्षण कहा गया है।

४ अस्तेय

धर्म में एकनिष्ठ होकर अपनी जीविका चलाते हुए किसी की कोई भी वस्तु छिपे तौर पर न चुराना ही 'अस्तेय' है।

चोरी मनुष्य तब करता है, जब वह अपने वर्ण के अनुसार निर्धारित किये गये कर्म को नहीं करता है। ब्राह्मण का अध्यय-अध्यापन आदि, व्यापारी का व्यवसाय आदि, शिल्पी का कारीगरी आदि में पूरी निष्ठा से लगे रहना ही कर्तव्य है। इस निर्धारित कर्तव्य का जो उल्लंघन करता है वह चोर है। अधिकारों के अनुसार निर्धारित किये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गये कर्तव्यों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पालन न करना चोरी है। जो वस्तु अपनी नहीं है उस पर अपना अधिकार जमाना भी चोरी है। या जो जिस योग्य नहीं है, छिपे या प्रकट तौर पर अपने को उस योग्य बताना भी चोरी है।

धर्म या न्याय से की गयी कमाई सच्ची होती है। वही अपनी है। अपर्याप्त होते हुए भी वही फल देने वाली होती है। चोरी से ली गयी अधिक वस्तु भी बुरी है। वह अनिष्टों और कष्टों को देने वाली तथा प्राणों का हरण करने वाली होती है। चोरी स्पष्ट अन्याय है। और अन्याय से प्राप्त वस्तु अन्याय का ही कारण होती है।

इसलिए मनुष्य की न्याय तथा सच्चाई में निष्ठा रहे और धर्म से कमायी गयी वस्तु का ही वह उपभोग करे, अस्तेय (चोरी न करना) को भी धर्म का लक्षण माना गया है।

५ शौच

शौच कहते हैं शुद्धि के लिए। वह दो प्रकार की होती है—एक बाहरी और दूसरी भीतरी। शरीर, वस्त्र, निवास, भोजन तथा व्यवहार की शुद्धि बाहरी शुद्धि है। इन्द्रिय, मन, अंतःकरण, बुद्धि की शुद्धि भीतरी शुद्धि है। बाहरी शुद्धि पानी, मिट्टी, साबुन, गोबर आदि से और भीतरी शुद्धि ज्ञान, अध्ययन तथा तपस्या से होती है।

नित्यप्रति स्नान तथा व्यायाम करने से शरीर के आँख, कान, नाक, मुख, दाँत आदि साफ एवं स्वस्थ रहते हैं। हमें चाहिए कि हम धुले हुए साफ कपड़े पहनें, जिससे बीमारी के कीटाणु हमें स्पर्श न करने पावें। जिस घर में हम रहें, वह हवादार और प्रकाश से युक्त होना चाहिए। हमारा भोजन ताजा और उसमें फल, शाक आदि पौष्टिक सामग्री भी होनी चाहिए। गंदा, सड़ा, और बासी भोजन हमें नहीं करना चाहिए। समाज में हमारा व्यवहार सच्चा और मधुर होना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार भीतरी शुद्धि के लिए हमें नियमित रूप से अच्छी अच्छी पुस्तकों को पढ़ना चाहिए। अच्छी पुस्तकों को पढ़ने से संस्कार बनते हैं। भीतरी शुद्धि के लिए दर्शनविद्या का अध्ययन करना चाहिए।

बाहरी शुद्धता से आरोग्य और भीतरी शुद्धता से शांति मिलती है। इसलिए शौच को धर्म का एक अंग माना गया है।

६ इन्द्रियनिग्रह

इन्द्रियों को वश में रखना ही 'इन्द्रियनिग्रह' है।

ये इन्द्रियाँ संख्या में दस है : पाँच बाहरी और पाँच भीतरी। पाँच बाहरी इन्द्रियों के नाम है : १ मुख, २ हाथ ३ पैर, ४ मलद्वार और ५ जननेन्द्रिय। इसी प्रकार भीतरी इन्द्रियों के नाम है : १ आँख, २ कान ३ नाक, ४ जीभ और ५ त्वचा (चमड़ी)। बाहरी इन्द्रियों को 'कर्मेन्द्रिय' और भीतरी इन्द्रियों को 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा जाता है।

पाँच कर्मेन्द्रियों के क्रमशः कार्य हैं : मुख से बोलना, हाथ से किसी वस्तु को लेना, पैर से चलना, मलद्वार से मल बाहर निकालना और जननेन्द्रिय से संतान पैदा करना। मुख से हम ऐसी वाणी बोलें जो सबको अच्छी लगे; इन हाथों से हम ऐसे कार्य करें, जो अपने लिए तथा दूसरे के लिए हितकर हों; पैरों से हम तीर्थयात्रायें, दर्शनीय स्थानों की यात्रायें तथा परोपकार के लिए गमन करें, मलद्वार से हम नियमित मल त्याग करें; जिससे पाचनक्रिया ठीक रहे; और जननेन्द्रिय से हम उतनी ही संतानें पैदा करें, जितने का पालन-पोषण कर सकें और जिनको शिक्षा दे सकें।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों आँख, जीभ, नाक, त्वचा और कान से क्रमशः रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का ज्ञान होता है। ये पाँचों ज्ञान क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में रहते हैं। मान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लीजिये हमारे सामने एक नारंगी है। हम आँखों से उसका रंग-रूप' आकार-प्रकार देखते हैं। फिर उसको हाथ में लेते हैं। छूने से वह चिकनी, मुलायम या ठंडी मालूम होती है। तब उसको हम नाक के पास ले जाते हैं। उसको सूंघने से उसमें मीठी महक लेते हैं। उसके बाद मुँह में रखते हैं। उसका स्वाद हमें मीठा लगता है। उसको खाते समय हमारी जीभ और हमारे तालु से जो शब्द होता है वह हमें सुनायी देता है।

इस प्रकार आँख से भली-बुरी वस्तुओं को देखना, जिह्वा से कड़वी-मीठी वस्तुओं का स्वाद लेना, नाक से सुगन्ध-दुर्गन्ध का अनुभव करना, त्वचा से कठोर-कोमल वस्तुओं को छूना और कान से कठोर-कोमल शब्दों को सुनना—ये पाँच कर्मेन्द्रियों के कार्य हैं, विषय हैं। इन विषयों की ओर से ज्ञानेन्द्रियों को रोक कर उन्हें ईश्वर के ध्यान में लगाना ही 'इन्द्रियनिग्रह' है।

इन दसों इन्द्रियों को इस प्रकार वश में किया जाय कि वे धर्म अर्थ, काम, और मोक्ष में लगी रहें। यही इन्द्रियजय या इन्द्रिय निग्रह है।

७ धी

बुद्धि या विवेक या शास्त्रों का ज्ञान ही 'धी' है। सभी प्राणियों में मनुष्यों को इसलिए श्रेष्ठ समझा गया है कि उनमें बुद्धि, गुण या विवेक रहता है। इस बुद्धि तथा विवेक के कारण हम अपना तथा दूसरों का भला-बुरा सोच सकते हैं। वही व्यक्ति बुद्धिमान् है, जो स्वयं सुखी रह कर दूसरों के सुख का ध्यान रखता है। जिस बात से अपना हित तथा कल्याण होता है वही बात दूसरे के बारे में भी लागू होती है। 'अपने लोगों के साथ उदारता, दूसरों पर दया, बुरे लोगों के साथ शठता, सज्जनों से प्रेम, दुष्टों के साथ अभिमान, विद्वानों के साथ सरलता, शत्रुओं के साथ शूरता, बड़े लोगों के साथ क्षमा, स्त्रियों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ चतुरता—इस प्रकार के व्यवहार कुशल लोग ही बुद्धिमान हैं।'

एक नीति श्लोक में कहा गया है कि 'अच्छी तरह पका हुआ अन्न, बुद्धिमान् बालक, भली-भाँति सिखायी गयी स्त्री, अच्छी तरह प्रसन्न किया हुआ राजा, सोच-विचार से कही गयी बात और ठोक-पीट कर किया गया कार्य—ये सभी बहुत लम्बे समय तक नहीं बिगड़ पाते।'

ये सभी बातें धर्म का अनुसरण करने पर ही जीवन में उतर सकती हैं।

८ विद्या

जानना ही 'विद्या' है। संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं वे विद्या से ही जानी जा सकती हैं। ये दोनों आँखें हमें ईश्वर ने दी हैं; किन्तु तीसरी आँख हमारी विद्या है। इसको देने वाले गुरु हैं। विद्या को देने वाले हमारे गुरुजनों को धर्म-ग्रंथों में इसीलिए इतना ऊँचा स्थान दिया गया है कि वे शिष्यों को दूसरा जन्म देते हैं। कहा भी गया है 'जो माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ाते नहीं वे शत्रु हैं।' विद्या के लिए माता-पिता तथा गुरु की ताड़ना ही पुत्र तथा शिष्य के लिए सबसे बड़ा आशीर्वाद है। इसीलिए बालकों को चाहिए कि वे माता-पिता और गुरु की आज्ञाओं का पालन कर विद्या का उपार्जन करें।

संसार के सभी धन एक समय समाप्त हो जाते हैं; किन्तु विद्या ही एक ऐसा धन है, जिसको न तो चोर चुरा सकता है, न राजा हड़प सकता है, न भाई बाँट सकता है, न उसको भार की तरह लादना होता है। उसको जितना खर्च किया जाय वह उतना ही बढ़ता है। इसीलिए विद्या सब धनों में श्रेष्ठ धन है:

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥

माता की तरह विद्या ही हमारी रक्षा करती है। पिता की तरह हित के काम में लगाती है। स्त्री की तरह खेद को दूर कर मनोरंजन करती है। धन को देकर लोक में यश बढ़ाती है।

इसीलिए विद्या को धर्म का एक अंग माना गया है।

६ सत्य

जिस बात को जैसा पढ़ा जाय, देखा जाय या सुना जाय उसको ठीक वैसे ही कहना 'सच बोलना' है।

इसका यह भी आशय है कि न केवल देखी, सुनी और पढ़ी बात को ही सही बोलना चाहिए; बल्कि अपने जीवन में हर समय सत्य का ध्यान रखना चाहिए। हमारे ऋषि, मुनि और महात्मा लोग न केवल संसार की देखी, सुनी तथा पढ़ी वस्तुओं को ही सच्चे रूप में प्रकट करते थे; बल्कि वे स्वयं भी सत्य के स्वरूप हुआ करते थे।

जिसके भीतर किसी प्रकार का छल, कपट या संदेह नहीं है उसी के भीतर सत्य का निवास होता है; और उसी की सब जगह विजय होती है। कहा भी है 'सच बोलने के बरोबर कोई तप नहीं और झूठ बोलने के बरोबर कोई पाप नहीं है। जो सत्यवादी है उसके भीतर ईश्वर है; क्योंकि ईश्वर सत्यस्वरूप है':

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप॥

सत्य ही श्रेष्ठ धर्म और श्रेष्ठ ज्ञान है। उससे आत्मा और बुद्धि दोनों प्रफुल्लित रहते हैं। उसी पर यह सारा संसार टिका है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हमें चाहिए कि हम हमेशा ही सत्य का अनुसरण करें। सत्य का पालन करने में प्राणों की ही बाजी क्यों न लगानी पड़े, उससे विमुख नहीं होना चाहिए। यह निश्चित है कि सत्य का आधार धर्म है और धर्म की ही अन्त में विजय होती है।

१० अक्रोध

क्रोध न करना ही 'अक्रोध' है। जैन दर्शन में क्रोध की गणना 'कषायों' में की गयी है और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली बुराइयों पर गहरे से विचार किया गया है।

क्रोध, मन की बुराई है, जिसको जीत लेना चाहिए। 'गीता' में कहा गया है कि काम, क्रोध, लाभ, मोह, मद और मत्सर—इन छह मन के विकारों (शत्रुओं) को जिसने जीत लिया उसने वस्तुतः अपने आपको और सारे संसार को जीत लिया।

किन्तु जो मनुष्य इन छह शत्रुओं में से किसी भी एक के वश में रहता है, निश्चित रूप से उसके प्राण हर घड़ी संकट में हैं। क्रोध एक ऐसा अभिशाप है, जिसके वश में होकर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। क्या अच्छा है, क्या बुरा है, उसकी यह विचारशक्ति नष्ट हो जाती है। विचारशक्ति का क्षीण हो जाना बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने का प्रमाण है। जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तब मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है।

इसलिए विचारवान् लोग क्रोध को सर्वदा अपने वश में रखते हैं। ऐसे व्यक्ति सदा शांति, संतोष तथा आनन्द का अनुभव करते हैं।

अतएव धर्म के इन दस अंगों या लक्षणों का विधिवत् पालन करना चाहिए। इनके पालन करने से ही मनुष्य असली अर्थों में धार्मिक होने का अधिकारी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे धर्मग्रंथ

वेद

वैदिक युग का जितना भी साहित्य था उसको 'वेद' कहा जाता था। किन्तु बाद में वेद से चार मंत्र संहिताओं को ही लिया जाने लगा। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्, वेद की मर्यादा के भीतर होते हुए भी उनको चार संहिताओं से अलग कर दिया गया।

वेद हिन्दू जाति की सबसे पुरानी और सबसे पवित्र पुस्तक है। वह पुस्तक न तो मुसलमानों की पुस्तक 'कुरान' की तरह एकमात्र धर्मपुस्तक है और न ईसाइयों को 'बाइबिल' की तरह अनेक महा पुरुषों को वाणियों का संग्रह मात्र ही। बल्कि वेद तो एक पूरा साहित्य हैं।

वेद चार हैं : ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। उन चारों की चार संहिताएँ हैं : ऋग्वेदसंहिता, यजुर्वेदसंहिता, सामवेदसंहिता और अथर्ववेदसंहिता। संहिता नाम संकलन या संग्रह का है। प्रत्येक संहिता में अलग-अलग वेदों के मंत्र संकलित हैं।

वेद सर्वज्ञानमय है

वेद हमारे सर्वस्व हैं। संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि जितने भी विषय हैं, सब की नींव वेदों पर ही टिकी है। इसलिए मनु महाराज ने वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती और मैक्समूलर जैसे आधुनिक वेदज्ञ विद्वानों ने भी इसी बात का समर्थन किया है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

'वेद' शब्द का अर्थ ही ज्ञान है। इस ज्ञान को पहले-पहल ऋषियों ने खोजा था या देखा था। इसीलिए ऋषियों को मंत्रद्रष्टा (मंत्रों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को देखने वाला) कहा गया। हिन्दू धर्म में वेदों को ईश्वरीय आदेशों के रूप में माना गया है।

वेद नित्य और अपौरुषेय हैं

वेद नित्य हैं; अर्थात् संसार की उत्पत्ति होने से पहले भी वेद थे और जब संसार का लय होगा तब भी वे बने रहेंगे। वेद अपौरुषेय हैं; अर्थात् उन्हें किसी पुरुष ने नहीं बनाया है। वे स्वयं उत्पन्न हुए।

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य में ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यकग्रंथ, उपनिषद्ग्रंथ, सूत्रग्रंथ और छह वेदांग का नाम आता है। ऐसा कहा जाता है कि ११३० वैदिक संहिताओं के उतने ही ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् थे। किन्तु उनमें से आज कुछ ही मिलते हैं।

ब्राह्मण

ब्राह्मणग्रंथों का मुख्य विषय कर्मकाण्ड है। कमकाण्ड अर्थात् यज्ञ, हवन, वर्ण, आश्रम आदि का विधान। उनमें प्राचीन ऋषियों की कथाएँ और संसार, ईश्वर तथा आत्मा आदि के सम्बन्ध में भी मोटे तौर पर विचार किया गया है।

आरण्यक

आरण्यकगंथ, वस्तुतः ब्राह्मणग्रंथों के ही हिस्से हैं। ब्राह्मणग्रंथों में गृहस्थाश्रम के कर्मों का विधान है और आरण्यकग्रंथों में वानप्रस्थ जीवन को बिताने के नियम हैं। उनमें ईश्वर, आत्मा, जीव आदि दर्शन सम्बन्धी बातों का भी वर्णन है। आरण्यक उनका नामकरण इसलिए हुआ कि वे जंगलों (अरण्यों) में रहने वाले वानप्रस्थियों के लिए लिखे गये थे।

उपनिषद्

उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का वर्णन है। वे ज्ञानप्रधान ग्रंथ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो विद्या, समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, जिससे संसार की कारणभूत अविधा के बंधन शिथिल पड़ जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं और जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, वही उपनिषद् विद्या, उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रमुख उपनिषद् १२ है : ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौषीतकी और श्वेताश्वतर।

वेदांग

छह वेदांगों के नाम है : शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदों के ही हिस्से होने के कारण इन्हें 'वेदांग' कहा गया।

दर्शन

दर्शन का अर्थ है 'देखना'। यह विराट् ब्रह्माण्ड और इसमें रहने वाले असंख्य पदार्थों को देखना ही दर्शनशास्त्र का काम है। यह जीवन क्या है, इस जीवन से जुड़े हुए इन रोना, हंसना, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, जीना, मरना आदि सम्बन्धों का अर्थ क्या है, इसी को दिखाना दर्शन का विषय है।

दर्शन पर ही धर्म आधारित है। विचारशास्त्र (दर्शन) और आचारशास्त्र (धर्म) का घनिष्ट आपसी सम्बन्ध है। दर्शन का एक रूप बुद्धि एवं विचार का विषय है और दूसरा रूप व्यवहार का विषय है। दर्शन का यही व्यावहारिक रूप ही धर्म है।

भारतीय दर्शन के दो मुख्य वर्ग है, जिनके नाम है : नास्तिक और आस्तिक। 'न + अस्ति,' नहीं है और 'अस्ति' है—इन दोनों विरोधी सिद्धान्तों को लेकर दर्शन के ये दो वर्ग बने और वे अन्त तक आपस में लड़ते ही रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेद प्रमाण नहीं है; उनको हमारे ही तरह के मनुष्यों ने बनाया है; ईश्वर नहीं है; पर लोक नहीं हैं; ये सभी बातें कल्पना करके गढ़ी गयी है; जो कुछ दिखायी दे रहा है, वही सत्य है; यह जीवन और यह लोक ही सब कुछ है—इन सिद्धान्तों को मानने वाले विचारकों को नास्तिक कहा गया। यह नास्तिक दर्शन छह भागों में विभक्त है : चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रांतिक, वैभाषिक (चारों बौद्ध) और आर्हत (जैन)।

इनके विरोध में छह आस्तिक दर्शनों का जन्म हुआ। इन सब में वेदों को अनादि और अंतिम प्रमाण माना गया है। इन छह आस्तिक दर्शनों में एक अदृष्ट शक्ति को माना गया है, जिसके ब्रह्म, प्रकृति, ईश्वर, परमात्मा आदि अनेक नाम हैं। छह आस्तिक दर्शनों के नाम है : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और वेदान्त (उत्तर मीमांसा)।

अक्षपाद गौतम ने न्याय, कणाद काश्यप ने वैशेषिक, महर्षि कपिल ने सांख्य, महामुनि पंतललि ने योग, महर्षि जैमिनि ने पूर्व मीमांसा और महर्षि वादरायण व्यास ने वेदान्त (उत्तर मीमांसा) की रचना की।

पुराण

जैन और बौद्ध धर्मों के विरोध में जिस पुरातन वैदिक धर्म का नये रूप में उदय हुआ उसी का नाम पौराणिक धर्म पड़ा। वह उदित पौराणिक धर्म यद्यपि वैदिक धर्म का ही समर्थक रहा; किन्तु आचार, विचार, अनुष्टान, व्रत, पूजा आदि के सम्बन्ध में उसकी नयी मान्यताएँ हैं।

पुराणों में जो धर्म तथा ज्ञान है उसको ब्रह्मा ने कहा। उसको वशिष्ठ, पराशर, शक्ति तथा कृष्ण द्वैपायन आदि 'व्यास' पदवीधारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋषि--महर्षियों ने ग्रंथरूप में निबद्ध किया। इन ग्रंथों को ही पुराण कहा गया। इस प्रकार के अठारह महापुराणों के नाम है : १ ब्रह्म, २ पद्म, ३ विष्णु, ४ शिव, ५ भागवत, ६ नारद, ७ मार्कण्डेय, ८ अग्नि, ९ भविष्य, १० ब्रह्मवैवर्त्त, ११ लिंग, १२ वराह, १३ स्कंद, १४ वामन, १५ कूर्म, १६ मत्स्य, १७ वरुण और १८ ब्रह्माण्ड।

स्मृतियाँ

स्मृतियाँ, हिन्दूधर्म की चरम उन्नति की सूचक हैं। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराणों में जिस श्रेष्ठ धर्म के अनेक अंगों पर कई हजार वर्षों तक जो विचार होता रहा उसी का सार इन पवित्र स्मृतियों में है। भारत के धार्मिक इतिहास में सामाजिक एकता को बनाये रखने में इन स्मृतियों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

संख्या में स्मृतियाँ अठारह बतायी जाती हैं; किन्तु उनमें मनु की 'मनुस्मृति' (या मानवधर्मशास्त्र) और याज्ञवल्क्य की 'याज्ञवल्क्यस्मृति' ही आज मुख्य मानी जाती हैं।

रामायण और महाभारत

ये दोनों महा ग्रंथ एक प्रकार से विश्वकोष हैं। अर्थात् उनमें धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, काव्य, राजनीति आदि सभी प्रकार के विचारों का समन्वय है। मुख्य रूप से उन्हें महाकाव्य और महाकाव्यों का जन्मदाता माना जाता है। किन्तु धर्म की दृष्टि से भी वे आदरणीय हैं। 'रामायण' में सतयुग का धर्म और 'महाभारत' में द्वापर का धर्म है। 'रामायण' हमारा पहला काव्य है। इसलिए उसके निर्माता महर्षि बाल्मीकि को आदिकवि कहा गया है। 'महाभारत' अनेक हाथों की रचना है। किन्तु उसके बनाने वालों में मुख्यता कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की रही है। अतः 'महाभारत' को आज वेदव्यास के ही नाम से कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गीता

हमारे धर्म ग्रंथों में 'गीता' का श्रेष्ठ स्थान है। वह भगवान् का गाया हुआ उपनिषद् है। गीताधर्म का उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था। वही भागवत धर्म है। वैशम्पायन ने राजा जनमेजय से कहा है : हे नृपश्रेष्ठ जन्मेजय, यही उत्तम भागवत धर्म, विधियुक्त और संक्षिप्त रीति से 'हरिगीता' (भगवद्गीता) में पहले तुझे बताया जा चुका है। 'गीता' का धर्म व्यवहार, सदाचार, कर्तव्य, नीति आदि के सम्बन्धों को बताने वाला श्रेष्ठ धर्म है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म की जीवन में आवश्यकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म की जीवन में आवश्यकता

धर्म से मन तथा आत्मा की शुद्धि

जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में भी सदाचारी श्रेष्ठ है। यह सदाचार, धर्म का ही एक अंग है। धर्म का परिपालन करने से ही मनुष्य की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं।

आरोग्यशास्त्र में जैसे स्वस्थ रहने के लिए व्यायाम तथा ब्रह्मचर्य की आवश्यकता बतायी गयी है, वैसे ही मन तथा आत्मा की शुद्धि एवं उन्नति के लिए हमारे शास्त्रों में धर्म के परिपालन की शिक्षा दी गयी है। धर्म के परिपालन से ही जीवन में धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय (चोरी न करना), शुद्धता, इंद्रियों का दमन, प्रतिभा, विद्या, सत्य, अक्रोध, दया और शांति आदि अनेक तरह के सद्गुणों का प्रवेश होता है। ये सद्गुण ही उसको देवता बना देते हैं।

धर्म ही सर्वस्व है

धर्म से सुख, हित और कल्याण की प्राप्ति होती है। धर्म से बढ़कर हमारा दूसरा मित्र नहीं है। सभी मित्र-संबंधियों से एक दिन साथ छूट जाता है; किन्तु धर्म जैसे मित्र का जीवन में अन्त तक और अन्त के बाद भी साथ बना रहता है। धर्म के आचरण से इस लोक में भी कम भला नहीं होता! शरीर की सुन्दरता बढ़ती है, सौभाग्य प्राप्त होता है, आयु, बल, यश, विद्या आदि जितनी भी निधियाँ हैं वे सभी सहज ही मिल जाती हैं। निर्जन वन और बड़ी विपत्तियों के बीच धर्म ही हमारी रक्षा करता है।

धर्म ही हमारा सर्वस्व है; एकमात्र शरण है। वेद, ब्राह्मण उपनिषद् पुराण और स्मृति आदि जितने भी धर्मग्रंथ हैं और ऋषि,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महर्षि, महात्मा आदि जितने भी ज्ञानी हुए हैं उन्होंने धर्म को इसी रूप मे देखा तथा सुना है।

धर्म से कल्याण

महावीर स्वामी, बुद्ध भगवान् आदि जितने भी धर्मप्राण महापुरुष हुए उन्होंने भी धर्म को श्रेय और कल्याण का कारण बताया है। कपिल, कणाद, गौतम, पतंजलि और व्यास आदि जितने भी बुद्धिवादी विचारक हुए उन सब ने धर्म के बावत एक ही बात कही है कि धर्म वह सदाचार है, जिसके द्वारा मानवता का हित और श्रेय होता है। सत्य, अहिंसा, दया और पवित्रता, यही सदाचार है। यह सदाचार ही हमारा नैतिक आधार है। उसी पर यह सरा समाज और यह सारी मानवता टिकी है।

अतएव, कल्याणप्राप्ति के लिए जीवन में धर्म की आवश्यकता, निर्विवाद है।

आचार ही धर्म है

अपने से बड़ों के साथ शिष्टता का व्यवहार और अपने से छोटों के साथ प्रेम का व्यवहार, यही धर्म का परिपालन है। ऐसा करने से हम दूसरों के मन में अपने लिए आदर का भाव पैदा करते हैं और दूसरों का आदर करते हैं। इससे मनुष्य-मनुष्य में मित्रता बढ़ती हैं; और धीरे-धीरे हम सभी मनुष्यों को तथा सारे विश्व को अपना ही समझने लगते हैं। इसको हमारे ग्रंथों में 'सर्वात्मभाव' कहा गया है; अर्थात् सभी में अपनी छाया का दर्शन या अपने ही में सब का दर्शन।

इस 'सर्वात्मभाव' को पैदा करने के लिए पहली आवश्यकता है मन को शुद्ध करने की। शुद्ध मन उसको कहते हैं, जिसमें किसी के लिए कोई बुराई नहीं रहती। मन की शुद्धि के लिए वेदों में कहे गये यज्ञ, दान तथा परोपकार आदि को करते रहना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही शुद्ध धर्म है और इसके आचरण से मन शुद्ध होकर उसमें 'सर्वात्मभाव' का उदय होता है।

धर्म से जीवन में उन्नति

वेदों के बाद दूसरा स्थान हमारी स्मृतियों का है। उनमें बताया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और, शूद्र, इन चारों वर्णों और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चार आश्रमों के अलग-अलग कर्तव्य क्या हैं।

आजकल हमारे वर्णाश्रमों की व्यवस्था 'मनुस्मृति' तथा 'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर आधारित है। इन स्मृतियों के एक भाग में कानून का भी वर्णन है। उसमें बताया गया है कि चोरी, व्यभिचार करना, झूठ बोलना तथा किसी का बुरा करना धर्म के विरुद्ध है। ऐसे लोगों को दण्ड दिया जाना चाहिए।

ये सभी बातें जीवन की उन्नति के लिए हैं। समाज में रहकर हम अपना और समस्त समाज का भला किस प्रकार कर सकते हैं, इसका तरीका हमें धर्म ही बताता है। धर्म ही हमें यह बताता है कि हम व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व का किस प्रकार कल्याण कर सकते हैं। धर्म ही हमें यह बताता है कि विपत्ति और संपत्ति के आ जाने पर धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म ही हमें यह बताता है कि राई से लेकर पर्वत तक जितने भी अचेतन प्राणी हैं और चींटी से लेकर हाथी तक जितने भी चेतन प्राणी हैं उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है।

इस दृष्टि से जीवन के लिए धर्म एक अनुशासन भी है। ऐसा अनुशासन, जो मनुष्य को दिव्य आखें देता है, जिनसे वह प्रत्येक वस्तु की असलियत और नकलियत को जान सकता है। धर्म के अनुशासन में रहकर मनुष्य कुसंगति और उससे उत्पन्न होने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाली बुराइयों से बचता है। प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि के शयन तक हमारी दिनचर्या को नियमित ढंग से चलाने के लिए धर्म ही हमारा साथी है। धर्म की डोरी से बँधा हुआ जीवन असम्भव को भी सम्भव कर लेता है।

इस मानव लोक के लिए धर्म ही एक ऐसा आधार है, जो सारी समस्याओं को सहज ही में सुलझा सकता है। आज विश्वशांति के लिए जितने भी यत्न किये जा रहे हैं, स्पष्ट है कि वे निरन्तर असफल होते आ रहे हैं। वह इसलिए कि जिन आधारों पर वे यत्न टिके हैं उनमें सच्चाई और हृदय की आवाज नहीं है। यदि ये यत्न सच्चाई और सहृदयता से किये जाते तो उनकी सफलता में कोई संसय नहीं था। यह सच्चाई और सहृदयता धर्म के ही कण हैं।

धर्म को जीवन में उतारने से जो लोग हिचकते हैं और यह मानते हैं कि धर्म क्षुद्र मानवता की वस्तु है वे लोग वस्तुतः धर्म को नहीं जानते हैं। धर्म, मानवता को उठाता है। वह तो मानवता का रक्षक है। उसी पर सारी मानवता टिकी है। इसलिए मानवता की रक्षा के लिए धर्म की रक्षा आवश्यक है।

धर्म से जीवन बँधा है

यदि धर्म को जीवन से अलग कर दिया जायगा तो उसी क्षण जीवन नष्ट हो जायगा। इस जीवनरूपी पौधे के लिए धर्म एक रस है, जिसके सहयोग से वह टिका है और उसमें हरियाली दिखाई दे रही है।

मनुष्य भले ही धर्म से रूठ जाय; किन्तु धर्म उससे नहीं रूठता। अधर्मी मनुष्य का भी धर्म प्रतिक्षण उपकार ही करता रहता है। धर्म मनुष्य से प्रेम करता है। जो मनुष्य धर्म से प्रेम करता है उसकी समस्त जीवन-दिशाओं को धर्म सदैव निष्कंट और प्रशस्त बनाये रखता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन सब बातों को देखते हुए जीवन के लिए धर्म की क्या आवश्यकता है—यह सहज ही समझ में आ जाता है।

'न्याय और धर्म' शीर्षक 'राजतरंगिणी' की एक कथा से और भी स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में धर्म की आवश्यकता क्यों है।

न्याय और धर्म

काश्मीर की राजगद्दी पर चन्द्रापीड़ नामक एक राजा ने राज्य किया। वह बड़ा धर्मात्मा, न्यायपरायण और सत्यवादी था। उसने एक देव मंदिर बनाने का संकल्प किया। उसने राज्य के कर्मचारियों और शिल्पियों को भूमि की व्यवस्था करने का आदेश दे दिया।

शिल्पियों ने मंदिर के लिए एक स्थान को चुना। वे उसको नापने लगे। किन्तु बीच में उनको एक चमार ने रोक दिया। बात असल में यह थी कि उस स्थान पर चमार की भी एक झोपड़ी थी। उस झोपड़ी कों भी मंदिर के लिए उठाने का आयोजन था।

चमार के हठ की बात राज्य के मंत्रियों तक पहुँची। उन्होंने चमार को झोपड़ी के बदले मालोमाल कर देने का वचन दिया। किन्तु चमार किसी भी शर्त पर राजी न हुआ। अन्त में बात राजा के कानों तक पहुँची। राजा ने स्पष्ट कह दिया 'किसी की जमीन को जबरदस्ती नहीं छीना जा सकता है। इसलिए मंदिर के लिए दूसरी जगह तलाश की जाय।'

इस पर शिल्पियों के प्रधान ने राजा से निवेदन कि 'महाराज, पहली बात तो यह है कि उस स्थान पर मंदिर बनने का संकल्प किया जा चुका है और दूसरी बात यह है कि मंदिर के लिए वह स्थान सर्वोत्तम है।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिए महाराज ने चमार को बुलाकर कहा 'भाई, तुम जो मूल्य मंगो, तुम्हें दे दिया जायगा। तुम्हें स्वीकार हो तो तुम्हारी इच्छा से दूसरे स्थान पर तुम्हारे लिए एक भवन भी बनवा दिया जायगा। धर्म के कार्य में बाधा न डालो। यह देवकार्य है। इससे पाप होता है।'

राजा की इन बातों को सुनकर चमार ने विनम्र होकर कहा 'महाराज, मुझे झोपड़ी और भूमि का लोभ नहीं है। किन्तु यह झोपड़ी मेरी वंश थाती है। मेरे पुरखे इस पर रहते आये हैं। यह भूमि मेरी माता के समान है। जैसे किसी भी मूल्य या शर्त पर आप अपने पैतृक राजभवन को किसी दूसरे को नहीं दे सकते वैसे ही मैं अपनी झोपड़ी को किसी भी मूल्य पर नहीं दे सकता।'

यह सुनकर धर्मात्मा राजा चुप हो गया। चमार ने राजा की उदासी को भाँप लिया। उसने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा 'किन्तु आप ने मुझे धर्म संकट में डाल दिया है। देवकार्य में बाधा डालने से मुझ पर और मेरे पूर्वजों पर पाप चढ़ेगा। आप से मैं कैसे कहूँ किं आप मेरे घर आयें; किन्तु यदि आप मेरे घर आकर मुझसे मंदिर बनवाने के लिए मेरी झोपड़ी को माँगे तो मैं भूमि सहित अपनी झोपड़ी आप को दान कर सकता हूँ। इससे मुझे और मेरे पूर्वजों को भी पुण्य होगा।'

इस पर सारे सभासद और राजपंडित बौखला कर चिल्ला पड़े 'महाराज, इस चमार से भूमिदान लेंगे?'

किन्तु राजा ने चमार से कहा 'तुम जाओ'। दूसरे दिन काश्मीर का धर्मात्मा एवं न्यायपरायण अधीश्वर कंगाल चमार की झोपड़ी पर उससे दान की याचना करने के लिए उपस्थित हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार और विचार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार और विचार

आचार ही श्रेष्ठ धर्म है

हमारी श्रुतियों और स्मृतियों में जीवन की पवित्रता के लिए जो जो कार्य आवश्यक बताये गये हैं उनको करते रहना चाहिए। उसी में अपना और अपने द्वारा दूसरे का कल्याण है। जिस धर्म की सुरक्षा के लिए हमारे धर्मग्रंथों में कड़ाई से व्यवस्था की गयी है उस धर्म का एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है स्वयं को सुखी रखकर हम दूसरे के सुख का ध्यान रखें। जब ऐसी भावना व्यक्ति-व्यक्ति के मन में अपने आप पैदा होगी, तभी सारा विश्व सच्चे सुख-चैन का अनुभव कर सकेगा।

इसलिए धर्म और उसके अनेक अच्छे कार्यों में चरित्र-निर्माण का भी एक स्थान है। हमारा चरित्र हमारे आचरणों एवं व्यवहारों पर टिका है। इस संसार में भले भी और बुरे भी अनेक तरह के आचारं और व्यवहार हैं। हमारे धर्मग्रंथों में यह बताया गया है कि अच्छे आचरणों का पालन करने का क्या परिणाम होता है और बुरे आचरणों को अपनाने से क्या फल मिलता है।

हमारे यहाँ अच्छे व्यवहार को ही 'आचार' कहा गया है। अच्छा व्यवहार उसको कहते हैं, जिसमें स्वयं हमारा और सारे संसार का हित हो। यही आचार है। इसके विपरीत जिस व्यवहार से स्वयं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हमारा और सारे संसार का अहित होता हो वह 'अनाचार' है। आचार को 'सदाचार' और अनाचार को 'दुराचार' भी कहा गया है।

वेदों और स्मृतियों में कही गयी रीतियों के अनुसार जो व्यवहार किया जाता है वही अच्छा है और उसी को आचार या सदाचार कहा गया है। उनमें जिन बातों का निषेध किया गया है उन पर चलना अनाचार या दुराचार है।

धर्म का सामान्य लक्षण बताते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया है :

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और जो स्वयं को अच्छा लगे, ये चारों ही धर्म हैं। इनमें भी आचार को श्रेष्ठ धर्म कहा गया है :

'आचारः परमो धर्मः'

आचार को श्रेष्ठधर्म इसलिए कहा गया है कि हमारे व्यवहारों की कुँजी वही है। हम ऐसा व्यवहार करें, जिससे धर्म को हानि न पहुँचे। आचार को धर्म का मूल समझ कर ही ऋषियों ने अपने जीवन में परम धर्म आचार को उतारा।

आचार और व्यवहार

हमारा व्यवहार हमारे आचारों पर और हमारे आचार हमारे व्यवहारों पर टिके हैं। हमारे आचार-व्यवहार कैसे होने चाहिएँ, इसकी सीख हमें अपने धर्मग्रंथो में कहे गये उन महा पुरुषों के गुणों से ग्रहण करनी चाहिए, जिन्होंने अपने चरित्र के सब मलों को धो दिया है। इस प्रकार के सज्जनों या सत्पुरुषों के सत्संग की इच्छा करना, दूसरे के अच्छे गुणों से प्रेम करना, गुरुजनों के प्रति विनम्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बने रहना, विद्या में रुचि रखना, अपनी स्त्री से ही रति करना, लोक निन्दा के भय को ध्यान में रखना, ईश्वर की भक्ति करना, अपनी इच्छाओं को अपने वश में रखने की शक्ति प्राप्त करना, बुरे लोगों का साथ न करना—ये ही सदाचारी पुरुष के गुण है। इन्हीं गुणों को अपने जीवन में उतारना चाहिए। ऐसे ही लोग वन्दनीय एवं पूजनीय होते हैं। ये बातें राजर्षि भर्तृहरि के इस श्लोक में कही गयी हैं :

'वाञ्छा सुज्जनसंगमे, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं, स्वयोषितरतिः, लोकापवादाद् भयम्,
भक्तिः शूलिनिः, शक्तिरात्मदमने, संसर्गमुक्ति खले,
एते एषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः'

आचार का फल

सदाचरण पर दृढ़ रहकर जो मनुष्य कर्तव्यों का पालन और अकर्व्यों का वहिष्कार करता है, और वेद-स्मृति में कहे गये आचारों पर स्थिर रहता है उसी को श्रेष्ठ पुरुष कहा गया है।

श्रेष्ठ सदाचारी मनुष्य सब जगह पूजा जाता है। सभी लोगों के मन में उसके प्रति सम्मान होता है। उसकी अनुपस्थिति में भी लोग उसकी तारीफ करते हैं। लोग उसकी बातों को मानते हैं। उसके रहन-सहन और कार्यों का अनुकरण करते हैं।

अनाचार का फल

इसके विपरीत आचारों से गिरा हुआ व्यक्ति, चाहे वह बड़ा विद्वान् और वेद-शास्त्रों का ही ज्ञाता क्यों न हो, उसका सारा ज्ञान वृथा है; उसकी सारी पंडितायी निरर्थक है। उसकी सब निंदा करते हैं। उसको अनेक प्रकार की दुःख-व्याधियाँ मिलती हैं। अंत में उसकी दुर्गति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे धर्मशास्त्र में आचारहीन व्यक्ति की गणना नपुंसकों, भिखारियों, रोगियों, पशुओं और प्रेतों से की गयी है। वहाँ कहा गया है कि ऐसे आचारभ्रष्ट व्यक्ति को देवकार्यों तथा पितृकार्यों में सामिल नहीं होने देना चाहिए।

आचार का परिपालन

मनु ने कहा है कि धर्म या कर्त्तव्य का मूल वेद है। वेद के मानने वाले ऋषि-मुनि लोग जिन स्मृतियों की रचना कर गये हैं वे भी धर्म हैं। उस धर्म के अनुसार हमारे पुरखे जिन कर्तव्यों को बता गये हैं वही सदाचार है। उसका पालन करना चाहिए। उसी को व्यवहार में लाना चाहिए।

इसलिए गृहस्थ को आलस्यरहित होकर श्रुति और स्मृति में कहे गये कर्म, वेदपाठ, व्रत, नित्यकर्म और धर्म के मूलभूत सदाचार को हमेशा करते रहना चाहिए।

सदाचार के पालन से लम्बी आयु, मनचाही सन्तान और कभी न चुकने वाला धन मिलता है।

धर्म का अर्थ केवल ईश्वर की पूजा करना ही नहीं है; बल्कि सच्चाई और आदर्श के साथ जीवन बिताना भी धर्म है। इसीलिए चरित्र और आचार को सभी धर्मप्राण महात्माओं ने सबसे बड़ा समझा है। 'रामायण', 'महाभारत' तथा अन्य धर्मग्रंथों में लिखा है कि शील, धर्म और सच्चाई जहाँ रहती है वहाँ सुख-समृद्धि का निवास होता है।

आचार से विचार का नाता

आचार के साथ विचार का वही नाता है, जो आग से धुवाँ का जिस प्रकार आग के बिना धुवाँ और धुवाँ के बिना आग का होना सर्वथा असम्भव है उसी प्रकार आचारों के बिना विचारों का और विचारों के बिना अचारों का होना सम्भव नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचारों की अभिव्यक्ति ही विचार हैं। आचार व्यक्तिगत और भीतरी वस्तु है और उसको जब जीवन में चरितार्थ या लागू किया जाता है तब वही आचार, व्यवहार या विचार का चोला धारण कर लेता है। आचारों का मुख्य सम्बन्ध आचार करने वाले व्यक्ति से होता है और गौण सम्बन्ध बाहरी दुनियाँ है। किन्तु विचारों का मुख्य सम्बन्ध बाहरी दुनियाँ से होता है और गौण सम्बन्ध अपने आप से। लोक में हमारे अच्छे विचार-व्यवहार हमारे सदाचार हैं और बुरे विचार-व्यवहार दुराचार।

ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान, तप, परोपकार, गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति और देशभक्ति—इन आचारों का पाठ सीख कर हम उन्हें अपने रोजनामा जीवन में उतारते हैं। वे ही हमारे विचार तथा व्यवहार बन कर लोक में हमें सदाचारी प्रसिद्ध करते हैं। सदाचार हमें बताता है कि संसार में जो कार्य दूसरे के अधीन हैं उनको बिल्कुल छोड़ देना चाहिए, जो कार्य अपने से हो सकें उनको यत्न से करना चाहिए। जो पराधीन विषय हैं उनसे दुःख और जो स्वाधीन विषय है उनसे सुख होता है। यही सुख-दुःख की कसौटी है। जिस कार्य को करने से पुरुष को आत्मा सुख-शांति-सन्तोष का अनुभव करे उसी को करना चाहिए। दूसरे दुःख देने वाले कार्यों को नहीं करना चाहिए। यज्ञोपवीत देने वाला आचार्य, वेदपाठी, पिता, माता, गुरु, गाय और सब तरह के तपस्वियों, मुनियों, ऋषियों के चित्त को दुःखाने वाला कोई कार्य नहीं करना चाहिए। स्वर्ग, ईश्वर आदि को न मानने वाला नास्तिक बुद्धि, वेद निंदा, देवताओं की निंदा, द्वेष, दंभ, अभिमान, क्रोध, क्रूरता और हिंसा आदि को छोड़ देना चाहिए।

सदाचारी पुरुष की ये अच्छाइयाँ जब उसके विचार तथा व्यवहार में ढलकर उतरती हैं तब वे ही लोक के कल्याण का कारण बनती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः सदाचार और सद्विचार सब के लिए उपकारक हैं। इसी दृष्टि से हमारे वेद-शास्त्रों में सदाचारी बनने और अच्छा विचार-व्यवहार बरतने के लिए बड़ा जोर दिया गया है।

अच्छे आचार और विचार

आचारों का संबंध हमारे शरीर तथा हमारी क्रियाओं से है और विचारों का संबंध हमारे मस्तिष्क तथा हमारी वाणी से है। अच्छे आचारों के साथ अच्छे विचार सोने में सुगन्ध की तरह दुर्लभ हैं। सभाओं और सत्संगों में अच्छे विचारों का उपदेश देने वाले लोगों की आज कमी नहीं है; किन्तु अच्छे विचारों के ही अनुरूप अच्छे आचारों का निर्वाह करने वाले लोग विरले ही हैं। हमारे ऋषि, मुनि और तपस्वी आचरण से भी और वाणी से भी एक जैसे होते थे।

हमें चाहिए कि अपने जीवन में हम वेदों और स्मृतियों में कहे गये धर्म के मूल कारण सदाचारों को उतारें। इसी प्रकार ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं का अध्ययन कर हम, सदाचार का पालन करते हुए, अपने विचारों को उन्नत बनायें।

इसी उद्देश्य से हमारे शास्त्रों में सदाचार और सद्विचार की आवश्यकता पर वल दिया गया है।

आचार और विचार के जनक संस्कार

आचार और विचार के जनक संस्कार हैं। व्यायाम से स्वास्थ्य, विद्या से बुद्धि और अच्छे ग्रन्थों के अनुशीलन से विचारों की शुद्धि होती है। इन तीनों बातों की सफलता और असफलता संस्कारों पर निर्भर है।

बाल्यकाल में यदि बच्चे को अच्छे संस्कार मिले हैं, तभी वह आगे जा कर अपने स्वास्थ्य, बुद्धि और विचारों का विकास कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पायेगा। बाल्यकाल ही युवावस्था का आधार है। यदि मकान की नींव पक्की होगी तो निश्चित ही मकान टिकाऊ होगा। बाल्यकाल में मिले अच्छे संस्कार मनुष्य को व्यक्तिगत और व्यावहारिक जीवन की परीक्षा में सफल बनाते हैं। अपने प्रति, अपने राष्ट्र के प्रति और समस्त बाहरी संसार के प्रति मनुष्य के क्या कर्त्तव्य हैं, इसकी शिक्षा उसे, अच्छे संस्कारों पर टिकी बुद्धि, व्यक्तित्व और विद्या के द्वारा ही मिल सकती है।

हमारी समस्त धार्मिक क्रियाओं का मूल संस्कार ही बताये गये हैं। ये संस्कार ही मनुष्य के आचार-विचारों के निर्माता हैं।

हमारे उपनिषदों और पुराणों में सदाचार से संबंधित अनेक कथाएँ लिखी हुई हैं। इसी प्रकार की एक कथा 'स्कंद पुराण' (ब्रह्मोत्तर खंड, अध्याय १०-११) से यहाँ दी जा रही है।

सदाचार से कल्याण

दशार्ण देश के एक राजा का नाम था बज्रबाहु (वज्र की तरह कठोर हाथों वाला)। उसकी पत्नी का नाम था सुमति। रानी सुमति को एक पुत्र हुआ; किन्तु उसके कारण वह ऐसे रोग से ग्रस्त हुई कि अनेक तरह के इलाज करने पर भी वह दूर न हुआ। फलतः दुष्टबुद्धि राजा ने उसको बन में ले जाकर छोड़ दिया।

गहन जंगल में अपने को अकेली पाकर रानी सुमति को अनेक तरह की चिन्तायें हुईं। अंत में भटकती-फिरती वह एक नगर में पहुँची। उस नगर का रक्षक पद्माकर नामक एक महाजन था। उसकी दासी, रानी को उसके पास ले गयी। पद्माकर ने रानी का माता के समान आदर किया और उसके इलाज के लिए बड़े-बड़े वैद्यों को नियुक्त किया। फिर भी रानी का पुत्र न बच सका। पुत्र की मृत्यु पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रानी ने बहुत विलाप किया। जब रानी विलाप कर रही थी, उसी समय ऋषभ नामक एक योगी वहाँ आ पहुँचा।

योगी ने रानी को कई तरह से समझाया। उसको उन्होंने पूर्व जन्म के कर्मों और उनके उपभोग करने का रहस्य समझाया। संसार का सार बताया। अन्त में उसे भगवान् महादेव की शरण में जाने को कहा। रानी ने योगी की बातों को ध्यान से सुना और योगी को धन्यवाद दिया। फिर भी वह अपने इस हठ से न डिगी कि 'मैं अपने पुत्र के साथ ही प्राण देना चाहती हूँ।'

रानी के इस अंतिम निर्णय को सुन कर योगी महाराज ने थोड़ी सी भष्म मृत बालक के मुँह में रख दी। बालक जीवित हो उठा। तब योगी ने उसी भष्म से उन माता-पुत्र का रोग भी दूर किया। दोनों को दिव्य शरीर मिल गया। अंत में योगी ने उससे कहा :

'बेटी, जब तक तुम इस संसार में जीवित रहोगी, वृद्धावस्था तुमको न छू सकेगी। तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु नाम से विख्यात होकर अपने राज्य को प्राप्त करेगा।' यह कह कर योगी चले गये।

रानी तथा बालक का पालन उसी महाजन के यहाँ होता रहा। अन्त में एक दिन भद्रायु ने अपने बल-बुद्धि से अपने पिता के शत्रुओं को अपने राज्य से खदेड़ कर राज्य को अपने हाथ में लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म का महत्त्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म का महत्त्व

धर्म शरीर से भी बढ़कर है

हमारे धर्मग्रंथों में धर्म का एकमात्र उद्देश्य हित और कल्याण बताया गया है। जिसका आदि, मध्य और अन्त सभी कुछ कल्याणमय है, ऐसे कल्याणकारी धर्म का महत्त्व निर्विवाद सिद्ध है।

इसीलिए हमारे धर्माचार्यों ने कड़ाई से धर्म का परिपालन करने का आदेश दिया है। कहा गया है कि 'भले ही जान चली जाय, किन्तु धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए।' ऐसा कहने का कारण यह है कि जितने भी सुख-दुःख हैं वे क्षणिक हैं; यहाँ तक कि यह शरीर, जिसके लिए हमें सब कुछ करना पड़ता है, सदा टिकने वाला नहीं है। यदि हमारे साथ सदा टिकने वाली कोई वस्तु है तो वह धर्म ही है। हमारे इस जीवन में सदा ही वह हमारे साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी वही हमारे साथ जाता है।

इसलिए धर्म का महत्त्व हमारे लिए शरीर से भी बढ़कर है। शरीर से बढ़कर हमें धर्म की रक्षा करनी चाहिए। धर्म की रक्षा से ही प्रत्येक व्यक्ति रक्षित है और धर्म को छोड़ देने से प्रत्येक व्यक्ति अरक्षित है। जैसा कि मनु महाराज ने भी कहा है 'यदि हम धर्म को मार देंगे तो धर्म भी हमें मार डालेगा; और यदि हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म भी हमारी रक्षा करेगा। इसलिए धर्म की सदैव अपने प्राणों से भी बढ़कर रक्षा करनी चाहिए।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

'गीता' में भी कहा गया है कि अपने धर्म पर बने रहने से भले ही मृत्यु हो जाय किन्तु दूसरे के धर्म को अपनाना खतरनाक है :

'स्वधर्मे निधनं श्रेय परधर्मो भयावहः'

अतएव धर्म का महत्त्व इसी में है कि (१) किसी इच्छा को पूरी करने के लिए धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए; (२) भय के आ जाने पर भी अपने धर्म से अलग नहीं होना चाहिए; (३) किसी भी लोभ में आकर धर्म को नहीं त्यागना चाहिए; (४) यहाँ तक कि मृत्यु ही सामने क्यों न आये, धर्म पर अडिग बने रहना चाहिए ।

धर्म का महत्त्व इन कारणों से है

(१) धर्म एक नियम और अनुशासन है। इस अनुशासन को देवताओं ने भी स्वीकार किया। प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सुव्यवस्था नियमों का पालन करने से ही बनी रह सकती है। धर्म जैसे कल्याणकारी नियम का परिपालन करने से ही सभी सुखी रह सकते हैं।

(२) धर्म ही हमें पापों से हटाकर पुण्यों में लगाता है। यही पुण्य हमारे कल्याण के कारण हैं।

(३) धर्म ही हमें क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायों (बुराइयों) से बचाता है। वही हमें धैर्य, क्षमा, दमन, चोरी न करना, शुद्धि, संयम, विवेक, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—इन कल्याणकारी कार्यों की ओर ले जाता है।

(४) धर्म ही एक ऐसी सर्वहितकारी व्यवस्था है, जिसके आदेशों पर चलकर मनुष्य चार वर्णों और चार आश्रमों का पालन करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझता है और उन पर चलता हुआ अपना कल्याण करता है।

(५) धर्म के परिपालन से ही जीवन में सदाचार आता है और तभी मनुष्य अपने से बड़ों का सम्मान तथा अपने से छोटों का प्रेम करना सीखता है।

(६) धर्म हमें बताता है कि परोपकार, ईश्वरभक्ति, देशभक्ति, गुरुभक्ति और अतिथिसत्कार से क्या लाभ होता है।

(७) धर्म ही हमारी शारीरिक उन्नति या स्वास्थ्यलाभ का कारण है। ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, ब्राह्ममुहूर्त में उठना, ठीक समय पर व्यायाम, स्नान तथा भोजन करना और रात को ठीक समय से सो जाना, हमारी इस दिनचर्या का निर्धारण भी धर्म ही करता है।

(८) धर्म ही हमें बताता है कि विषय-वासनाओं से दूर हटकर हम अपनी दसों इन्द्रियों, मन, बुद्धि और आत्मा को उन्नति की ओर ले जाँय।

(९) धर्म ही हमें बताता है कि बुरी संगति को छोड़ कर अच्छी संगति करनी चाहिए। जीवन में संतोष और सादगी का अभ्यास करना चाहिए।

(१०) मन, वचन और कर्म से धर्म का पालन करते हुए ही हम दूसरे की भलाई कर सकते हैं और अपने लिए भी सद्गति (मोक्ष) का संचय कर सकते हैं।

धर्म का यही महत्त्व है। धर्म के इसी महत्त्व को हमारे वेदों, स्मृतियों और पुराणों में बताया गया है। और इसी पर चलकर हमारे महापुरुष महात्माओं ने समस्त जीवों को कल्याण का मार्ग बताया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मो रक्षति रक्षितः

जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है

पाण्डवों के वनवास काल की यह कथा है। एक बार द्वैतवन में पाण्डवों को प्यास लगी। बहुत खोजने पर भी उन्हें पानी नहीं मिला। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर ने एक स्थान पर हरियाली देखकर नकुल को वहाँ पानी लाने के लिए भेजा। नकुल ने वहाँ जाकर पानी से भरा हुआ एक तालाब देखा। उस तालाब में ज्यों ही वह पानी पीने को उद्यत हुआ त्यों ही उसे यह आकाशवाणी सुनायी दी 'इस तालाब के पानी पर मेरा अधिकार है। पहले मेरे सवालों का उत्तर दो तब पानी पीओ।'

किन्तु प्यास के मारे नकुल इतने व्याकुल थे कि आकाशवाणी पर ध्यान न देकर वे पानी पीने लगे। किन्तु पानी को मुँह पर छुआते ही वे मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

जब नकुल को गये बहुत देर हो गयी तब धर्मराज ने सहदेव को वहाँ भेजा। वे भी नकुल की ही तरह मूर्छा को प्राप्त हुए। यही हालत क्रमशः अर्जुन और भीम की भी हुई। अन्त में धर्मराज स्वयं वहाँ गये। उन्होंने मृतक भाइयों की दशा पर बड़ा विलाप किया। जब वे पानी पीने के लिए तालाब की ओर लपके तो उन्हें भी वही वाणी सुनायी दी। उनके सामने एक यक्ष खड़ा था।

धर्मराज ने शांतिपूर्वक यक्ष से प्रश्न करने के लिए कहा। यक्ष ने अनेक प्रश्न किये और धर्मराज ने उनका उत्तर दिया। अंत में संतुष्ट होकर यक्ष ने कहा: 'हे राजन्, तुमने मेरे प्रश्नों का सही एवं सन्तोषजनक उत्तर दिया है। इसलिए अपने इन भाइयों में जिस एक को तुम चाहो वह जीवित हो सकता है।'

इस पर युधिष्ठिर ने कहा, 'कृपया मेरे छोटे भाई नकुल को जीवित कर दीजिए।' इस पर यक्ष ने आश्चर्य से कहा, 'राजन्, तुम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्यहीन होकर वन में भटक रहे हो। तुम्हें शत्रुओं के साथ संग्राम करना है। अतः तुम अपने पराक्रमी भाई भीम को या अर्जुन को जीवित कराने की इच्छा प्रकट करो।'

किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा 'हे यक्ष, वनवास का दुःख और शत्रुओं से संग्राम तो लगा ही हुआ है। किन्तु मनुष्य को धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म स्वयं उसकी रक्षा करता है। कुन्ती और माद्री, दोनों मेरी मातायें हैं। कुन्ती का पुत्र मैं जीवित हूँ। मेरी दूसरी माता माद्री का बेटा भी जीवित रहे। इसलिए आप नकुल को ही जीवन दान दीजिए।'

यक्ष ने कहा, 'धर्मराज, तुम बड़े उदार हो। अतः तुम्हारे चारों भाई जीवित हो जायँ। मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हें देखने तथा तुम्हारे धर्म की परीक्षा लेने के लिए आया था।'

अंत में धर्म अपने वास्तविक रूप में युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुआ। सभी मृत भाई जीवित हो उठे।

• यह कथा 'महाभारत' के वन पर्व (३१२–३१४) में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सनातन धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सनातन धर्म

धर्म के अनेक नाम रूप

भारत धर्मप्राण देश है। यहाँ के लोगों में आदि काल से ही धर्म के लिए गहरी आस्था रही है। इसीलिए संसार को समस्त संस्कृतियों में धर्म का समुदय, हमारे देश की अपेक्षा, बहुत बाद में हुआ। साथ ही हमारे देश में धर्म का जिस गति से विकास हुआ, वह भी संसार के धर्मों के विकास की अपेक्षा, भिन्न है। दोनों की तुलना करने पर लगता है कि भारतीय धर्म की अपेक्षा संसार के अन्य धर्म बड़ी धीमी गति से आगे बढ़े।

इसलिए यह जताने के लिए आज किसी प्रमाण या सहादत की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय धर्म पहला विश्वधर्म है।

वस्तुतः देखा जाय तो यह धर्म 'भारतीय' न होकर अपने आरंभ काल में 'आर्य' देश के नाम से विख्यात था।

यह आर्य-अनार्य का झगड़ा आज भी बड़ा उग्र रूप लिये है। हमारे वैदिक ग्रंथों (निरुक्त) में आर्यों को ईश्वर का पुत्र कहा गया है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र 'आर्य' शब्द का उल्लेख हुआ है। इसी आदिम जाति के नाम पर उसके धर्म का 'आर्य धर्म' नामकरण हुआ।

आज आर्य धर्म को 'भारतीय धर्म' या 'हिन्दू धर्म' से कहा जाता है। यदि आर्य जाति के ही नाम पर 'आर्य धर्म' का नामकरण हुआ,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो जिसके कारण 'हिन्दू धर्म' यह नाम पड़ा, वह हिन्दू जाति कौन थी, इसकी जिज्ञासा होनी स्वाभाविक ही है।

पर्याप्त खोज के बाद विद्वानों को कहना पड़ा कि वेदों से लेकर पुराणों तक जितने भी धर्मग्रंथ हैं उनमें कहीं भी 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। फिर भी स्पष्ट है कि इतनी सुन्दर आर्य जाति के नाम के स्थान पर हिन्दू जाति की प्रतिष्ठा बहुत पुराने समय में ही हो चुकी थी।

यदि ऐसा न होता तो इस 'हिन्दू' नाम का उल्लेख इतने प्राचीन समय में पारस जैसे सुदूर देशों के धर्म थों में न हुआ होता। यद्यपि पारसी में 'हिन्दू' शब्द का एक अर्थ 'चोर' या 'काफिर' भी है; किन्तु इसका कदापि भी विश्वास न करना चाहिए कि हिन्दुओं को दृष्टि में रखकर ऐसा कहा गया था। वह तो वस्तुतः एक सामान्य सी बात थी; किन्तु आज उसका प्रयोग बुरे अर्थों से किया जा रहा है।

हिन्दू धर्म पुराना है; किन्तु उसका 'हिन्दू' नामकरण नया है। कुछ लोगों का कहना है कि 'सिन्धु' को बदल कर 'हिन्दू' शब्द बना; क्योंकि पारसी में 'स' को 'ह' कहा जाता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि पारसी में 'हिन्दू' शब्द का अर्थ 'काला' होता है। यह अर्थ इसलिए किया गया कि हिन्द के निवासी आकृति से काले होते हैं। किन्तु ये सभी अटकलें मनगढ़न्त है।

भारत के साथ पारस का सांस्कृतिक संबंध प्राचीन काल से रहा है। इस देश के राजाओं का पारस में हमेशा ही आना-जाना होता रहा। इसलिए जहाँ भी उनके यहाँ 'हिन्दू' शब्द को आर्य जाति के लोगों के अर्थ में प्रकट किया गया है वहाँ पारसियों की धर्म पुस्तक 'दसातीर' का यह वाक्य अवलोकनीय है, जिसमें कहा गया है कि 'व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया, जिसके समान कोई पण्डित नहीं था।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महर्षि व्यास, 'महाभारत' और अन्य अनेक ग्रंथों के रचयिता थे। उनके ईरान (पारस) तक आने और वहाँ के ग्रंथों में उनके देश का नाम 'हिन्द' बताने से यह साबित करता है कि आज से हजारों वर्ष पहले आर्य देश को हिन्द और उसके निवासियों का धर्म, उसके ही नाम पर 'हिन्दू धर्म' कहा जाने लगा था।

इस प्रकार विश्वधर्म के रूप में विख्यात इस आर्य धर्म में समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहे। ऐसा इसलिए हुआ कि उन युगों और परिस्थितियों की माँग थी। कभी उसको वैदिक धर्म कहा गया; कभी वह संघधर्म या गणधर्म के नाम से कहा जाता रहा; कभी वह व्यापक सिंधु सभ्यता का धर्म रहा; और अन्त में वह शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि अनेक शाखाओं में पल्लवित होकर इस देश की धर्मनिष्ठा का परिचय देता रहा।

सदा रहने वाला ही सनातन धर्म है

ऊपर जिन विभिन्न धर्म शाखाओं का उल्लेख किया गया, सनातन धर्म, वस्तुतः उनमें किसी वर्गविशेष का धर्म नहीं रहा है, जैसी कि शैव, वैष्णव तथा जैन, बौद्ध आदि धर्म शाखाओं की स्थिति रही। सनातन धर्म की इस परिभाषा से यही सिद्ध होता है। कहा गया है कि 'जिस धर्म का दूसरे धर्मों के साथ कोई विरोध न हो, अथवा जिससे किसी भी धर्म को बाधा न पहुँचे, जो समस्त मानवता के अभ्युदय तथा कल्याण में समान रूप से सहायक हो वह 'सनातन धर्म' है। अनादिकाल से चले आ रहे धर्म को ही सनातन धर्म कहा गया। सनातन का अर्थ है सदाभव, नित्य और निश्चल; अर्थात् जो सदा रहे, नित्य रहे और जिसका कभी नाश न हो। धर्म सदाभव, नित्य और निश्चल है। इसलिए उसको 'सनातन' कहा गया। उसको 'सनातन' इसीलिए नहीं कहा गया कि वह कुछ लोगों का धर्म था, जो दूसरे लोगों के धर्म का विरोध करता था। सनातन धर्म से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आशय वह विश्वधर्म है, अनादि काल से ही जो सारी मानवता का धर्म रहा है।

इस 'सनातन' शब्द में विश्वभाव हैं। उसके भीतर हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब आ जाते हैं।

आर्यसमाज का उदय होने पर बाद में कुछ लोगों ने अपने को सनातनधर्मी कह कर आर्यसमाज से अपना विरोध प्रकट किया। किन्तु सनातन धर्म वस्तुतः आदिम विश्वधर्म का ही पर्याय था।

यही दशा हिन्दूधर्म की भी रही। आदि में हिन्दू धर्म किसी जातिविशेष या वर्गविशेष का धर्म न होकर इस देश की उस समस्त जनता का धर्म था, जो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैली हुई थी। किन्तु बाद में हिन्दू धर्म को अन्य धर्मों से अलग करके एक विरोधी धर्म के रूप में माना जाने लगा।

सभी धर्मशाखाओं का एक ही लक्ष्य

वस्तुतः देखा जाय तो आर्य धर्म, सनातन धर्म, वैदिक धर्म, हिन्दू धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म, ये सभी एक ही देश की जनता के धर्म रहे हैं। उनमें जो परिवर्त्तन होता गया उसमें इस देश की जनता की आवाज या क्रांति ही कारण रही है।

इस दृष्टि से यदि हम इस देश के धार्मिक विकास का अध्ययन करें तो बहुत-सी व्यर्थ की बातों का अपने-आप समाधान हो जाता है। बहुधा यह कहा जाता है कि वैदिक धर्म की विरासत में जिस हिन्दू धर्म का जन्म हुआ, जैन तथा बौद्ध धर्मों से उसका विरोध है, अथवा जैन-बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म के विरोधी धर्म हैं।

इसके विपरीत जैन अपने को हिन्दू कहते हैं। जैन मत में 'हिन्दू' शब्द की अलग ही व्युत्पत्ति बतायी गयी है। वहाँ 'हिं' से 'हिंसा' और 'दू' से 'दूर' ऐसा अर्थ किया गया है। अर्थात् जो हिंसा से दूर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहे वही हिन्दू है। अतः अहिंसा ही जिसका मुख्य लक्ष्य है, ऐसा जैन धर्म ही वास्तविक हिन्दू धर्म है।

वेदों एवं स्मृतियों में धर्म का जो स्वरूप बताया गया है जैन धर्म भी लगभग उसी का पक्षपाती है, यद्यपि उसको प्रस्तुत करने का तरीका उसका नया है। वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म में धैर्य, क्षमा, तप आदि धर्म के जो दस लक्षण बताये गये हैं, आंशिक परिवर्त्तन के साथ उन्हीं को जैन धर्म में स्वीकार किया गया है। जैन धर्म के दस लक्षण हैं :

१. शांति (खंति) : किसी के द्वारा अपमानित होने पर क्रोध न करना।
२. मार्दव (मद्दव) : नम्र बने रहना, गर्व न करना।
३. आर्जव (अज्जव) : व्यवहार में सरलता लाना और दंभ का त्याग करना।
४. मुक्ति (मुत्ति) : सब प्रकार के बंधनों तथा सम्बन्धों से अलग रहना।
५. तप (तब) : बारह प्रकार के तपों का परिपालन करना।
६. सत्य (सच्च) : सदा सच बोलना।
७. संयम (संजम) : इन्द्रियों का दमन करना।
८. शौच (सोयं) : शरीर तथा मन को पवित्र रखना।
९. अकिंचन (अकिंचणं) : कोई भी वस्तु ग्रहण न करना तथा अपने पास कुछ भी न रखना।
१०. ब्रह्मचर्य (बम्भ): ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना।

यही स्थिति बौद्ध धर्म तथा वैदिक धर्म की है। बौद्ध धर्म का आधार भी वैदिक धर्म ही था। वैदिक धर्म की मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, इन चार भावनाओं को ही बुद्ध ने अपने उपदेशों में कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त बुद्ध ने स्वयमेव कहा भी कि 'मैं किसी नये धर्म को बताने नहीं जा रहा हूँ; बल्कि प्राचीन धर्म की बातों को ही लोगों के सामने रख रहा हूँ।'

इससे स्पष्ट है कि बुद्ध की शिक्षाओं का आधार वैदिक कर्तव्यशास्त्र ही था। उन्होंने ब्राह्मण के आचरणों को वैदिक वर्ण-व्यवस्था की भाषा में इस प्रकार कहा है 'जटायें धारण करने या गोत्र अथवा जाति से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। जिसमें सत्य और धर्म है वही ब्राह्मण है। जो कोमल, शिक्षाप्रद और सच्ची बात को बोलता है उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।'

आज हिन्दू, जैन, बौद्ध, आदि के समन्वय से धर्म के नाम पर 'भारतीयता' की स्थापना की गयी है। धर्म, संस्कृति और जाति, सबको एक ही 'भारतीयता' के भीतर रखा गया है। हमारा आज का राष्ट्र धर्म 'भारतीय' है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि इस देश के निवासी प्रत्येक व्यक्ति का धर्म 'भारतीय' है।

आदि युग से लेकर आज तक धर्म के समुदय तथा विकास का यही संक्षिप्त इतिहास है। इस इतिहास से हमने यह जाना कि समाज के उत्थान-पतन के साथ-साथ धर्म के स्वरूप में क्या-क्या परिवर्त्तन होते गये। किन्तु धर्म की जो मूल चेतना है वह कभी भी, किसी भी युग में, नहीं टूटी। वह आगे-आगे बढ़ती गई; ठीक उसी प्रकार जैसे हिमालय से निकल कर गंगा बीच की ऊबड़-खाबड़ धरती को पार करके अंत में समुद्र में जा मिलती है। गंगा से निकाली गयी नहरें जैसे गंगा नहीं है वैसे ही धर्म से निकाली गयी फाँके (फिरके) धर्म नहीं है।

धर्म की गति सनातन है। इसी को सनातन धर्म कहा गया है। उसकी मूल चेतना आदि से अबतक एक जैसी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चार वर्ण

वर्णों का उद्देश्य

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। ये चारों वर्ण एक ही समाज के अंग हैं। अपने मूल रूप में वे एक ही हैं। उनमें न तो कोई ऊँचा है और न कोई नीचा। सारी समाज-व्यवस्था को गुण और कर्म के अनुसार चार भागों में विभक्त कर इन चारों वर्णों की स्थापना की गयी। श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा है कि इन चारों वर्णों की सृष्टि, उनके गुण कर्मों के अनुसार मैंने की :

'चतुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः'

समाज में सुव्यवस्था बनी रहे, किसी के अधिकारों का कोई हनन न करे और प्रत्येक व्यक्ति अपने निश्चित मार्ग पर चलता हुआ अपना तथा समाज का निरन्तर कल्याण करता जाय, यही उद्देश्य इन चारों वर्णों के निर्माण का था।

ये चारों वर्ण, इस समाज के चार अंग है; वैसे ही जैसे हमारे शरीर के हाथ, पैर आदि अनेक अंग हैं। हमारे शरीर के सभी अंग यदि स्वस्थ रहेंगे तो हम भी स्वस्थ रहेंगे। यदि इनमें कहीं कोई गड़बड़ी आयी कि उसका प्रभाव सीधे हमारे सारे शरीर पर पड़ता है।

समाज के प्रति इन वर्णों का भी यही दायित्व है। इन चारों वर्णों के बारे में एक वेद-मंत्र में कहा गया है कि 'विराट् सृष्टिकर्ता परमेश्वर के ये चार अंग हैं। ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय हाथ है, वैश्य जंघायें हैं और शूद्र पैर हैं। इनमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है।'

एक शरीरधारी मनुष्य के लिए जितनी आवश्यकता हाथों की है उतनी ही पैरों की भी है। क्योंकि स्पष्ट है कि पैरों का कार्य हाथ नहीं कर सकते। इसी प्रकार हाथों का कार्य पैर नहीं कर सकते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः ब्राम्हण को मुख और शूद्र को पैर बताने में उक्त ऋचा का कदापि भी यह उद्देश्य नहीं है कि ब्राम्हण बड़ा और शूद्र छोटा है। ब्राह्मण को मुख इसलिए कहा गया है कि वह समाज में विद्या और ज्ञान की व्यवस्था करे। क्षत्रिय को भुजा इसीलिए कहा गया कि भुजायें शक्ति की प्रतीक हैं। क्षत्रिय को चाहिए कि वह अपने कर्तव्यों को करता हुआ समस्त समाज की रक्षा करे। राजा होने का अधिकार भी क्षत्रिय को है। क्षत्रिय का दायित्व है कि वह प्रजा में सुव्यवस्था बनाये रखे। कहीं ऐसा न हो कि छोटे को बड़ा और निर्बल को बलवान् खा जाय। वैश्य को जंघा (उरु) इसीलिए कहा गया है कि जिस प्रकार जंघायें सारे शरीर को थामें रहती हैं और उनके हिलने-डुलने से सारे शरीर में भोजन के रस का संचार होता है उसी प्रकार वैश्य लोग भी समाज की संपूर्ण अर्थ-व्यवस्था एवं वाणिज्य को अपने हाथों में लेकर उसको समाज में इस प्रकार से संचालित एवं वितरित करें कि सभी लोग सुखी तथा आनन्दित रहें। इसी प्रकार शूद्र को पैर इसलिए कहा गया है कि जिस प्रकार पैर सारे शरीर का भार वहन कर उसे आराम पहुँचाते हैं उसी प्रकार शूद्र भी समाज की हर तरह से सेवा करें।

इसीलिए पुराणों में लिखा है कि ये चारों वर्ण एक ही पिता परमेश्वर की संतानें हैं। सबकी एक ही जाति है।

धर्मशास्त्र के अनुसार चारों वर्णों के अलग-अलग क्या कर्तव्य हैं, आगे कहा जायगा। यद्यपि उनके कर्तव्यों का स्पष्ट विभाजन कर इस बात की गुंजाइश ही नहीं रखी गयी है कि वे एक-दूसरे के कर्तव्यों का भूल से भी अधिकार प्राप्त करें, फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ विशेष निर्देश निर्धारित किये गये हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि ब्राह्मण के वंश में पैदा हुआ व्यक्ति तब भी ब्राम्हण ही कहा जायगा यदि उसने अपने कर्तव्यों और धर्म का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिपालन करना छोड़ दिया हो। कर्मों (कर्तव्यों) से गिरे हुए ब्राह्मण के लिए 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि वह काठ के हाथी और चमड़े के नकली मृग की भाँति केवल नाम भर का ब्राह्मण है।

'महाभारत' और 'भागवत' आदि पुराणों में तो यहाँ तक कहा गया है कि ब्राह्मण के गुण-कर्म यदि शूद्र में और शूद्र के गुण-कर्म यदि ब्राह्मण में दिखायी दें तो ऐसे ब्राह्मण को शूद्र और ऐसे शूद्र को ब्राह्मण समझना चाहिए। 'मनुस्मृति' में भी लिखा है जो ब्राह्मण प्रणाम, आशीर्वाद आदि लोकाचारों को नहीं जानता है उसको प्रणाम नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह शूद्र के समान है।

इन सब बातों का यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णों की अपेक्षा कर्म प्रधान है। जन्म से या वंश से शूद्र होने पर भी कर्म से ब्राह्मण हुआ जा सकता है। अतः कर्मों के संचालन एवं परिपालन के लिए ही समाज को चार वर्णों में विभाजित करने की आवश्यकता हुई।

चारों वर्णों के कार्य

ब्राह्मण के कार्य

ब्राह्मण के कार्य हैं : वेद तथा शास्त्रों को पढ़ना, उन्हें दूसरों को पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, मन को तथा इन्द्रियों को वश में रखना, पवित्र बने रहना, तप करना, संतोष रखना, दूसरे को क्षमा करना, सरल बने रहना, ज्ञानी तथा दयावान् होना, ईश्वर में विश्वास रखना और सदा सच बोलना।

क्षत्रिय के कार्य

क्षत्रिय के कार्य हैं : प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना वेद पढ़ना, ऐश-आराम से दूर रहना, शूर-वीर होना, धैर्य रखना, तेजस्वी होना, उदार बने रहना, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखना,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षमावान् होना, विद्वान्, साधु तथा ब्राह्मण का आदर-सत्कार करना और न्याय करना ।

वैश्य के कार्य

वैश्य के कार्य हैं : गाय आदि पशुओं की रक्षा करना, खेती करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, वाणिज्य-व्यवसाय से देश की उन्नति करना, देवता-गुरु-ईश्वर की भक्ति करना, धर्म-अर्थ-काम इस त्रिवर्ग का सदुपयोग करना, आस्तिक (वेदों पर विश्वास) बने रहना, उद्योगशील होना और सभी कार्यों में चतुरता रखना ।

शूद्र के कार्य

शूद्र के कार्य हैं : विनम्र बने रहना, स्नानादि से शुद्ध एवं पवित्र बने रहना, मन में किसी प्रकार का कपट न रखना, स्वामी की सेवा करना, चोरी न करना, सच बोलना और गाय-ब्राह्मण की पूजा-रक्षा करना ।

चार आश्रम

आश्रमों का उद्देश्य

यह स्वाभाविक ही है कि जिसने मनुष्य का जीवन पाया है, उसकी जन्म से ही यह आदत बन जाती है कि वह भोग-विषयों की ओर खिंचे । ये भोग-विषय ही मनुष्य के अभ्युदय और पतन के कारण होते हैं । यद्यपि हमारे दर्शनों में, इन भोग-विषयों पर विजय प्राप्त करने के लिए वैराग्य (निवृत्ति) का मार्ग बताया गया है । किन्तु समाज के सभी लोग पुत्र, भाई, माता आदि के मोहों को एकाएक छोड़ करके वैराग्य को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं । बुद्ध और महावीर जैसे महात्मा विरले ही होते हैं, जो एक ही झटाके में सारे बन्धनों को तोड़ कर मुक्त हो जाते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिए हमारे धर्माचार्यों और धर्मप्राण महात्माओं ने अभ्यास और शिक्षा के द्वारा धीरे-धीरे इन सांसारिक बन्धनों को तोड़ डालने के लिए आश्रम धर्म की व्यवस्था की है। इसी को हमारे दर्शनों में 'प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाना' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त आश्रम धर्म की स्थापना का एक उद्देश्य यह भी है कि मनुष्य सारे जीवन एक ही तरह के कार्य करता हुआ ऊब न जाय। इसलिए अवस्था के अनुसार उसके लिए अलग-अलग आश्रमों में रहकर अलग-अलग कार्यों को करते रहने का विधान किया गया है।

आश्रम चार है: ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इनमें आदि के दो आश्रम प्रवृत्ति के हैं और अन्त के दो निवृत्ति के। अर्थात् जब तक मनुष्य ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ दशा में रहता है तब तक उसका सम्बन्ध लोभ, मोह, ममता से बना रहता है। किन्तु जब वह आगे के वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में प्रवेश करता है तब अपने आप उससे सारे लोभ-मोह दूर होते जाते हैं।

यद्यपि ब्रह्मचर्य के बाद सीधा संन्यास लिया जा सकता है, जैसा कि शंकराचार्य ने किया, किन्तु ऐसा सबके लिए सम्भव नहीं है।

हमारे धमग्रंथों में मनुष्य की सामान्य आयु १०० वर्ष की मानी गयी है। इसी प्रकार प्रत्येक आश्रम के लिए २५-२५ वर्ष का समय रखा गया है। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि २५ वर्ष की शैशवावस्था (ब्रह्मचर्य) में विद्या पढ़नी चाहिए; दूसरी युवावस्था के २५ वर्षों में संसार के विषयों का उपभोग करना चाहिए; तीसरी वृद्धावस्था के २५ वर्षों में साधु जीवन में रहकर परोपकार, परमार्थ तथा पुण्य करना चाहिए; और अन्तिम अवस्था में योगाभ्यास द्वारा शरीर को त्याग देना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मचर्य आश्रम

आश्रम धर्म की पहली मंजिल ब्रह्मचर्य है। 'ब्रह्म' कहते हैं विद्या या ईश्वर को। अतः विद्याध्ययन और ईश्वराधन के लिए जिस व्रत को धारण किया जाता है उसको 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।

पुरुषों के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि २५ वर्ष और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से उचित बताई गयी है। लड़के और लड़कियाँ गुरु के पास अलग-अलग रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

जब ब्राह्मण का बालक आठ वर्ष का, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष का और वैश्य का बारह वर्ष का हो जाय तब उसको जनेऊ पहनाना चाहिए। इसको यज्ञोपवीत या उपनयन-संस्कार भी कहते हैं। कहीं-कहीं यह अवस्था क्रमशः तीनों वर्णों के लिए ५, ६ तथा ७ वर्ष बतायी गयी है। उसके बाद ब्रह्मचारी बालक को गुरु के पास वेद पढ़ने के लिए भेज देना चाहिए। गुरु के पास रह कर ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह :

मधु, मांस, गंध तथा धन का सेवन न करे। उसको चाहिये कि वह मन, वचन और कर्म से अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए गुरु के पास रह कर वेद पढ़े।

ब्रह्मचर्य से धर्म की रक्षा होती है, यश फैलता है, बल बढ़ता है और इस जन्म तथा पर जन्म, दोनों का सुधार होता है।

गृहस्थ आश्रम

आश्रम धर्म की दूसरी मंजिल गृहस्थ है। इस आश्रम को मनु महाराज ने समुद्र बताया है। जैसे सब नदियाँ समुद्र में जाकर शरण पाती हैं उसी प्रकार सभी आश्रमों के लोग गृहस्थ के यहाँ जाकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्रय पाते हैं। इसलिए इहलोक और परलोक, दोनों के सुखों को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले लोगों को चाहिए कि वे गृहस्थ आश्रम का भली-भाँति पालन करें।

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह अपने गुरु की आज्ञा प्राप्त कर, अपनी वंश-परम्परा के अनुसार, अच्छी लक्षणों वाली रूपवती कन्या से विवाह करे। उसके बाद वे दोनों अपने सुखी परिवार का निर्माण करें।

विवाह करने का अर्थ न तो केवल संतान पैदा करना है और न इच्छाओं की संतुष्टि करना ही है। बल्कि पति-पत्नी एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं तथा धर्म-कर्म का ध्यान रखे। पिता, माता, भाई, बहन, श्वसुर, सास, ननद तथा देवर आदि सम्बन्धियों के प्रति उनका क्या कर्तव्य है, इस बात का भी खयाल रखें। गृहस्थ धर्म में स्त्रियों का विशेष ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि कहा गया है जिस घर में स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं वहाँ देवताओं का निवास होता है।

यह गृहस्थाश्रम सभी मनोकामनाओं को पूरा करने वाला पवित्र जीवन है। किसी को कष्ट न पहुँचाना, घर आये अतिथि का स्वागत-सत्कार करना, सदा सच बोलना, अपने मन को वश में रखना और अपनी शक्ति के अनुसार दान देना—गृहस्थों का धर्म है।

वानप्रस्थ आश्रम

आश्रम धर्म की तीसरी मंजिल है वानप्रस्थ जीवन। एक सद्गृहस्थ, सुख-सुविधाओं के बीच जब अपने सारे दायित्वों को अपनी संतान पर छोड़ देता है तब वह वानप्रस्थी कहा जाता है।

गृहस्थ के सुख-दुःखों के बीच रहता हुआ मनुष्य जब देखे कि शरीर में शक्ति कम होती जा रही है, सारी त्वचा (चमड़ी) पर झिल्लियाँ उभर आयी हैं, बाल फूल गये हैं और पुत्र के बाद पोता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पोतियाँ पैदा हो गये हैं, तब वह गृहस्थी को छोड़कर जंगल में चला जाय। उसका जो धन-धान्य तथा अन्य संपत्ति है उसको वह अपने पुत्रों तथा पत्नी पर छोड़ दे। यदि पत्नी भी तैयार हो तो उसको भी वह वन में साथ लेता जाय।

वन में जाकर दोनों पति-पत्नी सादे जीवन में रहें। फलों तथा शाक-सब्जियों से अपना पेट भरें; या भिक्षा करके उदर की पूर्ति करें। पाँच महायज्ञों को नियम से करते रहें। घास-फूस की शय्या में रहें। मृग की खाल ओढ़ें। दाढ़ी-मूछ न काटें। दोनों समय स्नान करके प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों समय संध्या करें। अच्छे-अच्छे ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन करते रहें।

उपनिषदों में लिखा है कि जो विद्वान् शांत मन से कर्मों को नियमपूर्वक करता है और अनेक कष्टों को सहन करता हुआ शुद्ध मन से जंगल में रहता है वह ईश्वर को प्राप्त करके परम आनन्द का अधिकारी होता है।

संन्यास आश्रम

आश्रम धर्म की चौथी या अंतिम मंजिल है संन्यास अवस्था। 'मनुस्मृति' में लिखा है कि आयु का तीसरा भाग वन में बिताने के बाद जब चौथा भाग आरम्भ हो तब वन को छोड़ दे; सबका साथ छोड़ दे; यदि स्त्री हो तो उससे भी अलग होकर संन्यासी बन जाय।

तीव्र वैराग्य उसको कहते हैं, जिसमें यह इच्छा होती है कि 'मुझे ब्रह्मलोक के अतिरिक्त किसी भी लोक की आवश्यकता नहीं है'। ऐसी स्थिर बुद्धि से जो विषयों का त्याग किया जाता है उसको तीव्र वैराग्य कहते हैं। शंकराचार्य ने ऐसे ही तीव्र वैराग्य में संन्यास लिया था।

संन्यास दो प्रकार का है : कर्म संन्यास और ज्ञान संन्यास।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ का ठीक तरह से पालन करने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाद धर्मशास्त्रानुसार जो संन्यास लिया जाता है उसको 'कर्म संन्यास' कहा जाता है। कर्म संन्यास में क्रमशः एक के बाद दूसरे संन्यास में प्रवेश किया जाता है। किन्तु ब्रह्मचर्य के बाद सीधे संन्यास धारण करना 'ज्ञान संन्यास' कहलाता है। श्रुति कहती है कि ब्रह्मचर्य या घर या वन, कहीं से भी ज्ञान संन्यास लिया जा सकता है। जिस दिन ही वैराग्य उत्पन्न हो जाय उसी दिन ज्ञान संन्यास लिया जा सकता है। यह तीव्र वैराग्य की अवस्था कहलाती है। शंकराचार्य ऐसे ही संन्यासी थे।

तीव्र वैराग्य उसको कहते है, जिसमें यह इच्छा होती है कि 'मुझे ब्रह्मलोक के अतिरिक्त किसी भी लोक की आवश्यकता नहीं है।' ऐसी स्थिर बुद्धि से जो विषयों का त्याग किया जाता है उसको तीव्र वैराग्य कहते हैं। शंकराचार्य ने ऐसे ही तीव्र वैराग्य में संन्यास लिया था।

'मनुस्मृति' में लिखा है कि वानप्रस्थ के बाद चौथी अवस्था में संन्यास लेना चाहिये। किन्तु पाखण्डी एवं नकली वेश धारण कर अपने को जो संन्यासी कहता है वह देवताओं को धोखा देता है, और उसके दोनों लोक नष्ट होते हैं।

कर्मफलों की इच्छा न रखते हुए जो महात्मा सभी प्रकार के परोपकार आदि धार्मिक कर्मों को नियमित रूप से करता रहता है वही योगी या संन्यासी है।

संन्यासी को चाहिये कि वह क्रोध को त्याग दे; सुख से उदासीन हो जाय; इन्द्रियों को वश में रखे; क्षमा, दया, शांति एवं लोक से प्रेम करे, शिक्षा एवं ज्ञान का बिना लोभ के वितरण करे; और निर्भय तथा शोकरहित होकर रहे।

बाल, दाढ़ी, नाखून, मूछ, सबको साफ करके वह पात्र, दण्ड तथा भगवा वस्त्र धारण करे। सभी प्राणियों को सुख देते हुए, स्वयं भी आनन्द से शरीर को त्याग कर मुक्ति प्राप्त करे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तीन कर्म

कर्म तीन प्रकार का है : १ नित्य, २ नैमित्तिक और ३ काम्य।

नित्य कर्म

वेद और शास्त्रों में जिन कर्मों को प्रतिदिन करने के लिए आज्ञा है वे 'नित्य कर्म' हैं; जैसे स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवताओं का पूजन, अतिथि सेवा आदि। इन नित्य कर्मों को करने से विशेष फल नहीं मिलता; किन्तु उनको न करने से पाप लगता है।

नैमित्तिक कर्म

जिन वेद-शास्त्र-विदित कर्मों को किसी निमित्त (उद्देश्य या प्रयोजन) से किया जाता है वे नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं; जैसे सोलह संस्कार, वृद्धों का स्वागत और श्राद्ध आदि।

काम्य कर्म

किसी विशेष कामना (इच्छा) की पूर्ति के लिए किये जाने वाले वेदोक्त कर्मों को 'काम्य कर्म' कहते हैं; जैसे पुत्र-कामना के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ, वर्षा के लिए कारीरी यज्ञ आदि।

पाँच महायज्ञ

धार्मिक कार्यों में पाँच महायज्ञ मुख्य हैं। इन पाँच यज्ञों का विधान इसलिए भी बताया गया है कि प्रतिदिन के कार्यों में गृहस्थ अनजाने में ही अनेक प्रकार के पापों को कर बैठता है। चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और घड़ा आदि, जो गृहस्थ की पेट-पूर्ति के आवश्यक साधन हैं, उनके द्वारा अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं की अनजाने में ही हत्या हो जाती है। इन्हीं अनजाने पापों के प्रायश्चित के लिए पाँच महायज्ञों का करना आवश्यक बताया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन पाँच महायज्ञों के नाम हैं : १ ब्रह्मयज्ञ, २ पितृयज्ञ, ३ अतिथियज्ञ, ४ भूतयज्ञ और ५ देवयज्ञ। इन पाँच यज्ञों का वर्णन वैदिक धर्म के प्रसंग में भी किया गया है; किन्तु सनातनी हिन्दुओं के लिए इनका पालन करना परमावश्यक बताया गया है।

१—ब्रह्मयज्ञ : ब्रह्मचर्य से रह कर आचार्य एवं गुरुओं की सेवा करना और उनसे निष्ठापूर्वक वेद आदि की शिक्षा प्राप्त करना 'ब्रह्मयज्ञ' है।

२—पितृयज्ञ : माता, पिता और गुरुजनों की आज्ञाओं का पालन करना और उनके बाद उनके द्वारा कहे गये आचरणों का निर्वाह करते हुए उनकी कीर्ति का बढ़ाना ही 'पितृयज्ञ' है। 'महाभारत' के अनुशासन पर्व में पितृयज्ञ, से श्राद्धकर्म लिया गया है। वहाँ कहा गया है कि प्रत्येक पितर मास में तर्पण द्वारा पितरों को तृप्त करना चाहिए।

३—अतिथियज्ञ : घर पर आये अतिथि का उदारतापूर्वक आदर सत्कार करना तथा सेवा करना और यथाशक्ति उनकी सहायता करना ही 'अतिथियज्ञ' है। गृहस्थाश्रम का यह सबसे बड़ा नियम है।

४—भूतयज्ञ : गाय, बैल, कुत्ता, और मनुष्य आदि जितने भी प्राणी (भूत) हैं उनको अन्न, जल, घास, तथा भोजन आदि से संतुष्ट करना ही 'भूतयज्ञ' है।

५—देवयज्ञ : प्रत्येक गृहस्थ के घर में सायं-प्रातः अग्निकुण्ड जलता रहना चाहिए। उसमें केसर, कस्तूरी, घी, तिल, चावल, चन्दन तथा पान आदि से हवन होना बताया गया है। यही 'देवयज्ञ' है। इस अग्निकुण्ड की घर की सौभाग्यवती स्त्रियाँ देख-रेख किया करती हैं।

'महाभारत' में भी प्रत्येक गृहस्थ के लिए पाँच महायज्ञों को करते रहने का आदेश है। वहाँ 'अतिथि-यज्ञ' को 'नृ-यज्ञ' नाम दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है। 'नृ' अर्थात् घर पर आये (अथिति) अनुष्य का सत्कार। इसी प्रकार 'ब्रह्मयज्ञ' के स्थान पर 'ऋषियज्ञ' कहा गया है। धार्मिक ग्रंथों को संयमपूर्वक पढ़ना ही 'ऋषियज्ञ' है।

इनको नित्य यज्ञ कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोलह संस्कार

किसी साधारण वस्तु को विशेष क्रियाओं से उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। इस संसार के नानारूप जीवों में मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है। किन्तु मनुष्य का जन्म पाना ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य जीवन की चरम उन्नति मोक्ष में बतायी गयी है। इस साधारण मनुष्य जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक क्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है। ये ही धार्मिक क्रियायें संस्कार कहलाती हैं। इन्हीं के द्वारा मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे वेदों तथा स्मृतियों में, जन्म से लेकर मृत्यु तक के लिए विशेष प्रकार के नियमों का पालन करते रहने का आदेश दिया गया है। इन नियमों पर चलकर हम, जीवन की अनेक अवस्थाओं को उन्नत बना सकते हैं। इन नियमों पर चलकर हम समाज में अपने कर्तव्यों और अधिकारों को निभाते हैं। हमारे व्यक्तिगत जीवन के लिए तथा हमसे जुड़े हुए हमारे परिवार-जनों तथा नाते-रिस्तेदारों के लिए यही सत्य का मार्ग हैं। इसी पर चलकर हम समाज को उन्नत बना सकते हैं। अतः संस्कारों का जीवन में मुख्य स्थान है।

सोलह संस्कारों के नाम हैं: १ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकर्म, ९ उपनयन, १० वेदारंभ, ११ समावर्त्तन, १२ विवाह, १३ गार्हस्पत्य, १४ वानप्रस्थ, १५ संन्यास और १६ अन्त्येष्टि। इनका विधान इस प्रकार है:

१—गर्भाधान : गृहस्थ जीवन के लिए संतान ही एक ऐसा प्रकाश है, जिसके कारण सारा घर-बाहर प्रकाशमान हो उठता है। स्वस्थ, सुन्दर और बुद्धिमान् संतान पैदा करने के लिए हमारी स्मृतियों में जो विशेष विधान बताये गये हैं, इनका पालन करना ही 'गर्भाधान' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह होने के कम-से-कम तीन दिन बाद और अधिक-से-अधिक सात वर्ष तक पूरा ब्रह्मचार्य रहकर गर्भाधान किया जाना चाहिए। इसको पुत्रेष्टि भी कहते हैं।

२—पुंसवन : यह संस्कार गर्भाधान के तीसरे महीने में किया जाता है। यह संस्कार गर्भ को पुष्ट करने के लिए किया जाता है। इससे यह मालूम होता है कि गर्भ अपनी ठीक हालत में है। गर्भस्थ शिशु स्वस्थ हालत में रहे, इसके लिए स्त्री को अच्छी औषधियाँ दी जाती हैं।

३—सीमोन्नयन : यह संस्कार गर्भाधान के छठे या आठवें महीने इसीलिए किया जाता है कि गर्भ की नियमित रूप से वृद्धि होती रहे और गर्भिणी प्रसन्न रहे तथा उसके विचार अच्छे हों।

४—जातकर्म : बालक के उत्पन्न हो जाने पर नाल काटने से पहले ही यह संस्कार किया जाता है। इसमें बालक की जीभ में सोने की सलाई से 'वेद' लिखा जाता है, ताकि वह बड़ा होकर बुद्धिमान् हो।

५—नामकरण : इस संस्कार में जन्म के पन्द्रवें दिन बच्चे का नाम रखा जाता है। नाम ऐसा होना चाहिए, जो सुनने में अच्छा लगे। चारों वर्णों के बालकों के नाम उनके कर्तव्यों का द्योतन करने वाले होने चाहिएँ। लड़की का नाम दो-तीन अक्षरों का और सुनने में मधुर होना चाहिए।

६—निष्क्रमण : यह संस्कार जन्म के चौथे महीने किया जाता है। इस संस्कार में बालक को पहले सूर्य का दर्शन कराया जाता है और तब उसको घर से बाहर निकाला जाता है।

७—अन्नप्राशन : जन्म के छठे या आठवें महीने बालक को अन्न आरंभ करने के लिए यह संस्कार किया जाता है। उसका अन्नप्राशन मधु और खीर देकर किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८—चूड़ाकर्म : चूड़ाकर्म कहते हैं मुंडन संस्कार के लिए। यह संस्कार तीसरे या पाँचवें वर्ष किया जाता है। इसमें बालक के गर्भावस्था के बाल साफ कर दिये जाते हैं।

९—उपनयन : उपनयन कहते है यज्ञोपवीत या व्रतवंध के लिए। ब्राह्मण का आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार किया जाता है। इसकी अधिकतम सीमा तीनों वर्णों के लिए क्रमशः सोहल, बाईस और चौबीस वर्ष की निर्धारित है।

उपनयन कहते 'समीप ले जाना'। इस संस्कार में बालक को गुरु के समीप ले जाया जाता है। यहीं से बालक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर गुरु के आश्रम में रहकर वेद को पढ़ने का अधिकारी होता है।

१०—वेदारंभ : उपनीत बालक का वेद का अध्ययन करने के लिए जो संस्कार किया जाता है उसको वेदारंभ कहते हैं।

११—समावर्त्तन: गुरु के आश्रम में रहकर सांगोपांग वेद पढ़ने के बाद ब्रह्मचारी मेखला, दण्ड और मृगचर्म को त्याग कर बालों को कटवा देता है। इस समय उसको 'स्नातक' की पदवी दी जाती है और गुरु उसको गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों का उपदेश देता है।

१२—विवाह : संतानोत्पत्ति के लिए २५ वर्ष की आयु में जो पाणिग्रहण संस्कार किया जाता है उसको विवाह कहते हैं। गुरु के आश्रम में प्राप्त विद्या के सदुपयोग के लिए गृहस्थ जीवन का विधान है, जिसका आरंभ विवाह से होता है।

१३—गार्हस्पत्य : गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए विवाह के बाद जो संस्कार किया जाता है उसको गार्हस्पत्य कहते है। इस संस्कार के बाद उसको एक सद्गृहस्थ के लिए निर्धारित पंच महायज्ञों को करने का अधिकार मिल जाता है।

१४—वानप्रस्थ : गृहस्थाश्रम का पालन करने के बाद आयु के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरे भाग में मनुष्य को अराम, शांति और आध्यात्मिक उन्नति के लिए वन में चला जाना चाहिए। इस समय जो धार्मिक क्रिया की जाती है उसी को वानप्रस्थ संस्कार कहते हैं।

१५—संन्यास : वानप्रस्थ जीवन का भली-भाँति पालन करने के बाद आयु के चौथे या अन्तिम भाग में शिखा (चोटी), यज्ञोपवीत (जनेऊ) और अन्य अग्निहोत्र के पात्रों का त्याग कर दण्ड आदि धारण के लिए जो धार्मिक क्रिया की जाती है उसको संन्यास संस्कार कहते हैं। इसके बाद मनुष्य को कर्मकांड की क्रियाओं को नहीं करना पड़ता।

१६—अन्त्येष्टि : यह अन्तिम संस्कार मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर किया जाता है। मृतक मनुष्य को, वेद पाठ का उच्चारण करते हुए, चिता पर रखकर जला दिया जाता है।

इन सोलह संस्कारों का उद्देश्य हमारी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए है। इनसे शरीर और अन्तःकरण की शुद्धि होती है और तब ज्ञान की उपलब्धि होती है। ज्ञान प्राप्ति के बाद मनुष्य को मोक्ष मिलता है। मोक्ष वह अवस्था है, जिसके बाद फिर जन्म-मृत्यु के बन्धन में नहीं उलझना पड़ता। इस मोक्ष के लिए ही हमारे दर्शनों में अनेक प्रकार से विचार किया है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में मनु ने कहा है कि उपनयन को छोड़कर स्त्रियों के सब संस्कार क्रमशः यथा समय पर करने चाहिएँ। विवाह संस्कार ही उनका उपनयन संस्कार है। पतिसेवा ही उनका गुरुकुलवास है। घर का काम-काज ही उनके लिए हवन कर्म है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सृष्टि

इस सृष्टि के सम्बन्ध में विभिन्न दर्शन अपना अलग-अलग मत प्रकट करते हैं। वैशेषिक दर्शन के अनुसार यह सृष्टि अर्थात् संसार एक प्रकार का लीलास्थल है, जहाँ जीव अपनी उन्नति और मुक्ति के लिए चेष्टा करते हैं। जैसे दिन के बाद रात होती है उसी प्रकार सृष्टि के बाद प्रलय होता है। इस प्रलयकाल में जीव विश्राम करते हैं। उनके धर्म-अधर्म के संस्कार बच जाते हैं, जिनको लेकर वे अगली सृष्टि में जन्म लेते हैं।

वेदान्त का कहना है कि अपनी माया शक्ति के कारण ईश्वर इस प्रपंचपूर्ण सृष्टि का निर्माण करता है। ईश्वर की यह लीला मायावी होती है। जो लोग अज्ञानी हैं वे उसको सच समझ बैठते हैं; किन्तु जो तत्त्वदर्शी या ज्ञानी हैं वे उसको लीलामात्र समझते हैं।

सृष्टि की उन्नति और उसके विकास पर सांख्य दर्शन में बारीकी से विचार किया गया है। सांख्य के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है। जब पुरुष से प्रकृति का मिलन (संसर्ग) होता है तभी संसार की उत्पत्ति होती है। अकेला पुरुष और अकेली प्रकृति कुछ नहीं कर सकते हैं। अकेला पुरुष निष्काम होने के कारण सृष्टि नहीं कर सकता है। इसी प्रकार अकेली प्रकृति जड़ होने से कारण सृष्टि नहीं कर सकती है। प्रकृति की क्रिया पुरुष में संचरित होकर सृष्टि होती है।

दोनों का यह संसर्ग अंध-पंगु जैसा है। जिस प्रकार एक अंधा और एक लंगड़ा, ये दोनों एक दूसरे की सहायता से इधर-उधर जा सकते हैं उसी प्रकार जड़ प्रकृति, निष्क्रिय पुरुष, ये दोनों मिलकर एक दूसरे की सहायता से अपना-अपना कार्य पूरा करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकृति में ज्ञान नहीं है। इस ज्ञान के लिए वह पुरुष पर निर्भर है। इसी प्रकार पुरुष में आत्म-स्वरूप की पहचान नहीं है। इसी आत्म-स्वरूप का दर्शन उसे प्रकृति से मिलता है।

प्रकृति तथा पुरुष के संसर्ग से सबसे पहले बुद्धि का जन्म होता है। बुद्धि में धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-आसक्ति आदि धर्म होते हैं। प्रकृति का दूसरा विकार है 'अहंकार'। 'मैं' और 'मेरा' यह अभिमान ही अहंकार है। इसी अहंकार से पुरुष मिथ्या भ्रम में पड़ता हैं। अहंकार तीन प्रकार का है सात्त्विक, राजस और तामस।

सात्त्विक अहंकार से ग्यारह प्रकार की इन्द्रियों की उत्पत्ति, तामस अहंकार से पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति और राजस अहंकार, सात्त्विक तथा तामस, इन दोनों अहंकारों का सहायक होता है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के नाम हैं: आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़ी। इनसे क्रमशः रूप, शब्द, गंध, स्वाद और स्पर्श का ज्ञान होता है। पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम हैं: मुख, हाथ, पैर, मलद्वार, और जननेन्द्रिय। इनके कार्य हैं क्रमशः बोलना, किसी वस्तु को पकड़ना, जाना, मल बाहर फेंकना और संतान पैदा करना। इनके अतिरिक्त बारहवीं इन्द्रिय है मन। मन कासभी इन्द्रियों से संबंध बना रहता है।

तामस अहंकार से उत्पन्न होने वाली पाँच तन्मात्राओं के नाम हैं: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और स्पर्श। इन पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों की सृष्टि होती है। उनके नाम हैं: आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी।

यही सांख्य की सृष्टि है।

रामानुजाचार्य के अनुसार सर्व शक्तिमान परमेश्वर की इच्छा से यह प्रकृति तीन प्रकार के तत्त्वों में बंट जाती है: तेज, जल और पृथ्वी। इन्हीं के परस्पर मिलन से सारे जगत् की उत्पत्ति होती है। इसी को ही 'त्रिवृत्करण' कहा गया है। रामानुज के मत से सृष्टि वास्तविक है और यह जगत् उतना ही सत्य है, जितना ब्रह्म या ईश्वर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवात्मा तथा परमात्मा

जीव कहते हैं 'चेतन' के लिए और आत्मा कहते हैं 'व्यापक' के लिए। अतएव जीवात्मा चेतन और व्यापक है।

आत्मा के दो प्रकार हैं : एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। परमात्मा और ईश्वर एक ही है। वही इस जगत् का कर्ता, धर्ता एवं आश्रय है। जीवात्मा, चैतन्य के रूप में सब जीवों में व्याप्त है। उसका ज्ञान भीतरी अनुभवों से प्राप्त किया जा सकता है। ये भीतरी अनुभव मन के विषय हैं। 'मैं सुखी हूँ' या 'मैं दुःखी हूँ' मन के इन विशेष अनुभवों द्वारा ही जीवात्मा के गुण प्रकट होते हैं।

ईश्वर (परमात्मा) और जीवात्मा अलग-अलग हैं। ईश्वर में सत्, चित् और आनन्द, ये तीन गुण हैं। जीव में अंतिम गुण नहीं होता। जीवात्मा सत् है, अर्थात् अविनाशी एवं अमर है और चित् होने के कारण चैतन्यविशिष्ट है। जीवात्मा की सारी दौड़-धूप 'आनन्द' की प्राप्ति के लिए है। ईश्वर की कृपा, आराधना, उपासना और भजन-कीर्तन के द्वारा जीवात्मा को आनन्द की उपलब्धि होती है। यही उसका अंतिम लक्ष्य है। इसी को जीव की मोक्षावस्था कहा जाता है।

न्याय दर्शन में बुद्धि या ज्ञान, सुख-दुःख, राग-द्वेष, इच्छा, प्रयत्न आदि आत्मा के गुण बताये गये हैं। हमारे भीतर का 'मैं' ही आत्मा है। वही इन इच्छाओं का अनुभव करता है।

आत्मा चैतन्य है। भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्मा रहता है। यदि ऐसा न होता तो देवदत्त के भोजन करने पर यज्ञदत्त का भी पेट भर जाना चाहिए था। अथवा एक शरीर की मृत्यु हो जाने पर सभी शरीरों की मृत्यु हो जानी चाहिए थी। इससे स्पष्ट है कि अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग आत्मा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आत्मा सत्य और अविनाशी है। शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार आदि आत्मा नहीं। आत्मा ही भोक्ता, और ज्ञाता है।

मोक्ष

यह संसार दुःखों का घर है। प्रत्येक जीव को इन सांसरिक कष्टों एवं क्लेशों को भोगना पड़ता है। निःसन्देह संसार में अनेक प्रकार के आनन्द भी हैं; किन्तु उनकी अपेक्षा दुःख ही अधिक हैं। इन दुःखों से किसी प्रकार त्राण भी पाया जा सकता है; किन्तु बुढ़ापा और मृत्यु ऐसे दुःख हैं, जिनसे छुटकारा पाना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है।

सांसारिक जीवों के लिए यह दुःख नाना प्रकार के हैं। उनको हमारे शास्त्रकारों ने तीन तरह का बताया है: आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। रोग, भूख, क्रोध, संताप आदि शरीर और मन से भोगे जाने वाले दुःख आध्यात्मिक हैं। कांटा चुभना, बिच्छु या सर्प का डंक यह भौतिक पदार्थों से होने वाले दुःख आधिभौतिक दुःख हैं। इसी प्रकार अतिवृष्टि, अकाल, बाढ़ आदि आधिदैविक दुःख हैं।

सभी जीव यह चाहते हैं कि इन समस्त दुःखों से सदा के लिए छुटकारा मिल जाय। ऐसा तभी सम्भव है, जब हमें यह मालूम हो जाय कि यह दुःख क्या है। इन दुःखों को हम तत्त्व-ज्ञान से ही जान सकते हैं। अज्ञान पर ज्ञान की विजय ही तत्त्वज्ञान है। हमारे सभी दुःख इसी अज्ञान के कारण होते हैं।

शरीर के साथ इन्द्रियों का बंधन ही अज्ञान और दुःखों का कारण है। हमारा यह शरीर, हमारे इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अलग हैं, ऐसा समझना ज्ञान है। हमारा यह अज्ञान ऐसा ही है, जैसा रस्सी में साँप। अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी को देखकर जिस प्रकार हमें सर्प का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिथ्या ज्ञान होता है उसी प्रकार हम 'मैं हूँ' ऐसा कह कर शरीर और मन को ही भ्रम से सब कुछ समझ बैठते हैं। रस्सी में सर्पभ्रम को दूर करने का उपाय है प्रकाश। इसी प्रकार शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से 'मैं हूँ' इस अहंभाव को दूर कर आत्मा का असली स्वरूप जानने का उपाय है ज्ञान।

जब शरीरादि से आत्मा को अलग करके देखा जाता है, अर्थात् आत्मा जब इन्द्रियों के बंधन से मुक्त हो जाता है तभी समस्त दुःख अपने आप मिट जाते हैं। आत्मा की यह मुक्तावस्था हीं मोक्ष, अपवर्ग, पुरुषार्थ, कैवल्य आदि अनेक नामों से कही जाती है।

यह आत्मा की चरम अवस्था है, जिसको अजर, अमर, अभय और अमृत्युपद कहा गया है। जब आत्मा को मोक्ष प्राप्त होता है तब उसमें कोई विकार नहीं रहता। आत्मा को जिसने पा लिया है, ऐसे पुरुष को 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है।

ईश्वर

हमारे दर्शनों में माना यह गया है कि जीवों के कर्मानुसार ईश्वर, जगत् की रचना करता है और जीवों के सुख-दुःख का विधान करता है। ईश्वर जगत् का सृजन करने वाला, पालक और संहारक है।

यह जीवसृष्टि धर्मप्रधान है। इसमें रहने वाली जीवात्मायें अपने पाप और पुण्य के अनुसार क्रमशः दुःख और सुख के भागी होते हैं। कोई भी जीव अपने कार्यों के करने में पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं। वह ईश्वर के अधीन होकर अपने सब कार्य करता है। ईश्वर ही उसको प्रत्येक कार्य करने की प्रेरणा देता है। जैसे कोई पिता अपने पुत्र की योग्यता एवं बुद्धि के अनुसार उसको, उसके योग्य कार्यों में लगाता है, वैसे ही परम पिता परमेवर भी जीवों को उनके अतीत संस्कारों के अनुसार कर्म करने तथा उनका फल पाने के लिए नियुक्त करता है। ईश्वर ही मनुष्यों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा अन्य जीवों को धर्म में लगाने वाला और उनके कर्मों का फल देने वाला तथा उनके सुख-दुःखों का निर्णय करने वाला है।

ईश्वर सर्वज्ञ है; क्योंकि उसे सभी वस्तुओं और घटनाओं का यथार्थ ज्ञान है। ईश्वर में छह गुण हैं, अर्थात् वह षडैश्वर्यसम्पन्न है। उसके छह गुणों या ऐश्वर्यों के नाम हैं: आधिपत्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य।

ईश्वर का ज्ञान साक्षात् अनुभव से प्राप्त किया जा सकता है; अथवा ईश्वर का ज्ञान पाने के लिए ऋषियों तथा महात्माओं के कहे हुए वचनों पर विश्वास करना चाहिए। वेद या श्रुतिं उन महात्माओं या ऋषियों के ज्ञान का संग्रह है, जिन्होंने ईश्वर को देखा है। अतः वेदों को ईश्वरसिद्धि का प्रमाण माना गया है।

योग दर्शन में बताया गया है कि ईश्वर को केवल ध्यान से ही प्राप्त किया जा सकता है। वह महाप्रभु है, जो अपनी कृपा से उपासकों के पाप और दोष दूर करके उनके लिए योग का मार्ग सुगम बना देते हैं। जो ईश्वर का सच्चा उपासक है और उसी पर सब तरह से निर्भर है; जो सर्वदा ईश्वर के ध्यान में लीन रहता है और सारे संसार में ईश्वर को ही व्याप्त हुआ देखता है, ऐसे भक्त को हृदय की शुद्धता और बुद्धि का प्रकाश, ये दो सर्वोच्च विभूतियाँ मिलती हैं। ईश्वर उसके मार्ग से सारी वाधाओं को दूर कर देता है।

ईश्वर दयामय है। इसलिए मैत्री, करुणा, सत्य, शौच और उपासना के द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त करनी चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक धर्म

वेद हमारे सर्वोच्च धर्मग्रंथ है। वेदों पर हमारा उतना ही विश्वास है, जितना ईश्वर पर; उनकी आज्ञाओं और उनके आदेशों के पालन से ही हमारी इस सम्पूर्ण जाति तथा देश की रक्षा होती आयी है।

वैदिक धर्म सारी मानवता का धर्म है

हमारे ऋषियों ने अपने पवित्र अन्तःकरणों में जिन सनातन सत्यों का दर्शन किया वे ही सत्य वेदमंत्रों में कहे गये हैं। उन सत्यों में 'अनुशासन' या 'ऋत' का सिद्धान्त भी एक है। ऋत या अनुशासन कहते हैं व्यवस्था (संग्रह) को।

वेदों में विशाल मानवता से कर्तव्यों एवं अनुशासनों का विस्तार से वर्णन किया गया है। किस को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, क्या लेना चाहिए, क्या नहीं लेना चाहिए, क्या जानना चाहिए, क्या नहीं जानना चाहिए, क्या बरतना चाहिए, क्या छोड़ देना चाहिए, इन सभी बातों का निर्देश वेदों के अनुशासन में किया गया है।

अनुशासन का यह सिद्धान्त किसी व्यक्ति, जाति या राष्ट्र के लिए न होकर समस्त मानवता के लिए है। अतः वैदिक धर्म संपूर्ण मानवता का धर्म है। वैदिक दृष्टि यथार्थ मानव दृष्टि है। मनुष्य का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य के साथ और मनुष्य का समस्त बाहरी दुनियाँ के साथ क्या संबंध होना चाहिए, इसका वर्णन वेदों के 'ऋत सिद्धान्त' में किया गया है। वेदों में सब के लिए समान रूप से सत्य, मंगल और सुख की कामना की गयी है।

वेदों का यह 'ऋत' सत्य और सब का पिता है। सूर्य, चन्द्र, रात, दिन, सुबह, सायँ और ऋतुएँ आदि अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक निर्वाह करते रहें, इसकी व्यवस्था 'ऋत' ही करता है। उसके आगे देवता भी नतमस्तक हैं। देवताओं और मनुष्यों के लिए वह सन्मार्ग पर चलने के लिए एक नैतिक नियम हैं। जीवों के लिए उसमें बताया गया है कि वे पापों से बचकर पुण्यों की ओर बढ़ें।

कर्म और उनका फल

वेदों के एक भाग में कर्मों का निरूपण किया गया है। वहाँ अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग कर्म बताये गये हैं। सभी व्यक्तियों को सभी कार्य करने का अधिकार नहीं हैं, क्योंकि अधिकार-रहित किये गये कर्म फलप्रद नहीं होते।

पवित्र आचार, निश्चल व्यवहार, अंतःकरण की शुद्धि करना सबसे लिए आवश्यक बतायी गयी है। चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, बलात्कार, हिंसा, प्रमाद और न खाने योग्य चीजों का खाना, ये निषिद्ध (न करने योग्य) कर्म हैं।

प्रत्येक जीव अपने द्वारा किये गये कर्मों के अनुसार ही उनका फल भुगतने के लिए फिर जन्म लेता है। बुरे कर्म करने वाले को पापमय जीवन और अच्छे कर्म करने वाले को पुण्यमय जीवन मिलता है। बुरे कर्मों से पेड़, लता आदि में और अच्छे कर्मों से ब्रह्मलोक तथा चन्द्रलोक में जन्म मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अदृष्ट शक्ति प्रकृति की खोज

वैदिक धर्म प्रकृति के रहस्यों पर आधारित भावुक मनुष्य का सरल धर्म था। वेदों के ऋषियों ने इस जगत् के मूल में एक अदृष्ट शक्ति को स्वीकार किया था, जिसको उन्होंने 'प्रकृति' नाम दिया। उस प्रकृति के रहस्यों और शक्तियों को उन्होंने तप के द्वारा प्रत्यक्ष किया।

उन्होंने अनुभव किया कि यह दिखायी देने वाला सारा प्रपंच वास्तव में जैसा दिखायी दे रहा है, वैसा नहीं है। उसका अन्त दुःखमय है। इस दुःखमय अंत को जानने के लिए उन्होंने यत्न किया और यह अनुभव किया कि उसको परम सुख में बदला जा सकता है। यह परम सुख ही परम श्रेय था। उसी परम श्रेय को अदृष्ट शक्ति या प्रकृति कहा गया।

देवता

यह विश्वप्रकृति केवल जड़प्रवाह नहीं है; बल्कि एक धर्मविधान है। जिस विधान के द्वारा प्राकृतिक नियम शासित होते हैं उसी का नाम 'धर्मविधान' है। जहाँ यह धर्मविधान है वहां किसी चेतन नियामक का होना आवश्यक है। इस जड़ जगत् का संचालन करने वाला कोई श्रेय-बुद्धि-संपन्न चेतन पुरुष अवश्य है। वह धर्मात्मा है। वही इस जगत् का शासक है। उसी के हाथों में इस कर्ममय जगत् की बागडोर है। उसी चेतन सत्ता का नाम 'देवता' है।

देवता कर्मफलों के दाता हैं

यह संसार कर्मों का घर है। इन कर्मों के अधिष्ठानरूप शक्तियों का नाम ही देवता है। वे अलग-अलग और अनेक होते हुए भी उनकी संख्या निश्चित है। उनकी संख्या तैंतीस करोड़ बतायी गयी है; किन्तु मोटे तौर पर समाज में तैंतीस देवता माने जाते हैं। उन तैंतीस देवताओं में आठ वसु देवता, बारह आदित्य देवता, ग्यारह रुद्र देवता, एक इन्द्र देवता और एक प्रजापति देवता हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठ वसु देवताओं के नाम हैं : १ धर, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ विष्णु, ५ अनिल (अग्नि), ६ अनल (वायु), ७ प्रत्यूष और ८ प्रभास।

बारह आदित्य देवताओं के नाम हैं : १ भग, २ ऐंश, ३ अर्यमा, ४ मित्र, ५ वरुण, ६ सविता, ७ धाता, ८ विवस्वान्, ९ त्वष्टा, १० पूषा, ११ इन्द्र और १२ विष्णु।

इसी प्रकार ग्यारह रुद्र देवताओं के नाम हैं : १ अजैकपाद, २ अहिर्बुध्न, ३ विरुपाक्ष, ४ सुरेश्वर, ५ जयन्त, ६ बहुरूप, ७ त्र्यंवक, ८ अपराजित, ९ वैवस्वत, १० सावित्र और ११ हर।

यद्यपि वेदों में देवताओं की आराधना इसलिए की गयी है कि उनके नाम से हवि दी जाती है; किन्तु बाद के ब्राह्मणग्रंथों में मनुष्य के कर्मानुकूल फल देना देवताओं के अधीन बताया गया है।

अतः अपने श्रेय और सुख के लिए मनुष्यों को देवताओं को खुश करना आवश्यक है। देवताओं को खुश तभी किया जा सकता है जब निर्दिष्ट धर्म का अनुसरण किया जाय। तभी मनुष्य अनुकूल सुख को प्राप्त कर जीवन को सार्थक बना सकता है।

देवताओं के स्वभाव और गुण

देवताओं के स्वरूप और गुणों का वर्णन करने वाली अनेक ऋचायें वेदों में हैं। उनका निष्कर्ष इस प्रकार है :

१—देवता शुभकर्मों (यज्ञादि) के द्वारा परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं और उसे अपना सहायक समझते हैं।

२—उसी परमेश्वर के आश्रय में शरीर छोड़ने के बाद अंत में वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

३—वे कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय करने वाली बुद्धि रखते हैं।

४—वे परोपकार में तत्पर रहते हुए अपना और दूसरों का कल्याण करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५—वे आत्मा के प्रकाश से भीतर का अंधकार दूर करते हैं।

६—वे मातृभूमि के यश को फैलाते हैं।

७—वे मनुष्य को अहिंसामय व्यवहार का बोध कराते हैं।

८—वे सदा सत्य का पक्ष लेते हैं।

९—वे स्वयं ज्ञानी हैं और दूसरों को ज्ञान देते हैं।

वेदों के ऋषि

वेदमंत्रों का प्रथम बार दर्शन करने वाले प्रतिभावान् व्यक्तियों को ऋषि कहा गया है। वेदों का एक नाम 'श्रुति' भी है। इस वेदविद्या को ऋषियों ने परमात्मा से सुना और उसको दूसरे ऋषियों को सुनाया। ऋषि परम ज्ञानी थे। उनके उपदेश साक्षात् सत्य हैं।

इन ऋषियों की सात श्रेणियां हैं : १ ब्रह्मर्षि, जैसे वशिष्ठादि, २ देवर्षि, जैसे कण्वादि, ३ महर्षि, जैसे व्यासादि, ४ परमर्षि, जैसे भेलादि, ५ काण्डर्षि, जैसे जैमिनि आदि, ६ श्रुतर्षि, जैसे सुश्रुत आदि, और ७ राजर्षि, जैसे ऋतुपर्ण आदि।

वर्णों का विभाजन और उनके कर्तव्य

यद्यपि वेदों में कहीं भी कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था चार वर्णों में विभाजित थी, तथापि अनेक प्रसंगों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अलग-अलग कर्तव्य अवश्य बताये गये हैं।

ब्राह्मण

वैदिक युग का ब्राह्मण ज्ञानी, मधुरस्वभाव, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, यशस्वी, ज्ञान का प्रचारक, श्रेष्ठ गुण कर्मों वाला था। एक मंत्र में कहा गया है कि 'अग्नि के समान अज्ञान अंधकार को दूर करने वाला, ज्ञानी, सबको पवित्र करने वाला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद (पांचजन्य), इन सब का हित करने वाला, अग्रणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या नेता, विद्यादि ऐश्वर्यों से संपन्न ब्राह्मण को हम चाहते हैं या उससे उपदेश करने की प्रार्थना करते हैं।'

अतः उपदेश देना ब्राह्मण का पहला कर्तव्य था। इसके अतिरिक्त उसके कर्तव्य थे : १ हवन करना, २ अहिंसामय उत्तम व्यवहार का आचरण करना, ३ यज्ञ के स्वरूप को भली भांति जानना, ४ दान लेना तथा देना और ५ सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामित्व प्राप्त करना।

क्षत्रिय

इन्द्र संबंधी मंत्रों में क्षत्रियों के स्वभाव एवं कर्तव्यों का उल्लेख पाया जाता है। वेदमंत्रों में इन्द्र के लिए जो १ रक्षा करने वाला, ज्ञान की इच्छा करने वाला, ३ अच्छा दान देने वाला, ४ शूरवीर, ५ शक्तिसंपन्न, ६ अनेक श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित और ७ धन से संपन्न कहा गया है। ये सभी गुण एक क्षत्रिय राजा के भी हो सकते हैं।

वैदिक युग का क्षत्रिय सत्यभक्त, कीर्तिशाली अच्छी वाणी बोलने वाला और यज्ञादि शुभ कर्मों को करने वाला था।

वैश्य

ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक युग में वाणिज्य-व्यवसाय के लिए आकाशलोक और पृथ्वीलोक के बीच यानों (देवयान) द्वारा जाने-आने तथा धन एकत्र (धनमाहराणि) करने की व्यवस्था थी। व्यवसाय के लिए उस समय यह प्रार्थना की जाती थी कि 'विक्रय में लाभ हो'। एक मंत्र में कहा गया है कि 'जिस धन को लेकर मैं व्यापार आरंभ कर रहा हूँ उसमें मुझे लाभ होता रहे। राजा के द्वारा मुझे व्यापार के लिए और भी प्रोत्साहन मिलता रहे।'

वेदों में जुआ न खेलने और कृषिकार्य करने के लिए स्पष्ट आदेश दिया गया है। गायों को तब सबसे बड़ी संपत्ति समझा जाता था। उनकी महिमा का वेदमंत्रों में अनेक तरह से वर्णन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाणिज्य, पशुपालन और कृषि ही वैश्यों के मुख्य कर्तव्य माने गए हैं। 'गीता' में कहा गया है कि 'कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्यों का स्वाभाविक कर्तव्य है':

'कृषिगोरक्षवाणिज्य वैश्यकर्म स्वभावजम्'

शूद्र तथा अन्य कर्मकर

शूद्रों के संबंध में वेदमंत्रों में कोई विशेष बात नहीं लिखी है। यजुर्वेद के एक मंत्र में 'तपसे शूद्रम्' कह कर 'शूद्र को 'श्रम से आजीविका चलाने के लिए' आदेश दिया गया है।

यजुर्वेद के इसी प्रसंग में कारीगर (कर्मार), जौहरी (मणिकार), सुनार (हिरण्यकार), रंगरेज (रंजयिता), शिल्पी (तक्षक), नाई (वय), लोहार (अयस्ताप), चमार (अजिनसंध), आदि अनेक कर्मकरों का उल्लेख किया गया है।

गृहस्थाश्रम

गृहस्थ आश्रम का आरंभ विवाह करने के बाद होता है। वैदिक कर्तव्यों में गृहस्थाश्रम का उद्देश्य परिवार की सौभाग्य-वृद्धि के लिए माना जाता था। विवाह तब वासनाओं की तृप्ति के लिए न होकर पति-पत्नी के पारस्परिक सहयोग तथा वंश-वृद्धि के लिए और सन्तान पैदा करने के उद्देश्य से होता था।

पत्नी का हाथ पकड़ते हुए पति प्रतिज्ञा करता था कि 'हे कल्याणि, मैं तेरा हाथ इसलिए ग्रहण कर रहा हूँ, जिससे तू सौभाग्यवती हो और मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक जीवित रहे। न्यायकर्ता परमेश्वर और समस्त देवता तुझे मेरे पास सौंप चुके हैं।'

वंश-वृद्धि के लिए संतानोत्पत्ति, विवाह का मुख्य उद्देश्य माना जाता था। विवाह के समय दोनों वर-कन्या स्वेच्छा से एक दूसरे के साथ विवाह संबंध में बंधने के लिए संतान को जन्म देना ही अपना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्य ध्येय समझते थे। विवाह के पहले कन्या, ब्रह्मचारी से कहती थी 'पुत्र की कामना से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले हे युवक, तू मुझे मन से चाहता है। मैं भी तेरे सादगी और तप से पले हुए जीवन में संतान और ऐश्वर्य की कामना से तेरे साथ आना स्वीकार करती हूँ।'

इसका उत्तर ब्रह्मचारी देता था 'हे पुत्र की कामना करने वाली कुमारि, तू मन से मुझे चाहती है। मैं भी तुझसे भली भाँति परिचित हूँ। मैं तेरे साथ इस कामना से विवाह करने के लिए सहमत हूँ कि उत्तम संतान पैदा करके हम प्रजा की समृद्धि तथा कल्याण करें।'

पत्नी को साथ लेकर घर में प्रवेश करने के बाद अपने घर वालों से लड़का कहता था 'हे मेरे सगे संबंधियों, हमारे भविष्य के संबंध में चिन्ता करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है; क्योंकि सब तरह की शक्तियों का अर्जन करने के बाद ही हमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है।'

इस प्रकार वैदिक युग का गृहस्थाश्रम एक निश्चित नीति-नियमों पर आधारित था। विवाह-संबंध में जुड़ने वाले युवक-युवतियों को विवाह का उद्देश्य और अपने-अपने कर्तव्यों का पूरा ज्ञान, विवाह होने से पूर्व ही रहता था।

अतिथि सत्कार

गृहस्थ आश्रम का एक मुख्य कर्तव्य अतिथि-सत्कार भी था। जो गृहस्थ विद्वानों तथा अतिथियों का सत्कार करता था वह कभी भी दुःखी न होता था। उसकी गणना पांच महायज्ञों में इसीलिए की गयी है कि एक गृहस्थ के लिए उसका परिपालन करना अनिवार्य था।

शुद्ध आचरण

वैदिक कर्तव्यों में भीतरी और बाहरी शुद्धि के लिए कुछ आवश्यक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियम बताये गये हैं। इन नियमों में सबसे पहला नियम है ईश्वर की प्रार्थना करना। परमेश्वर को सर्वज्ञ एवं सब को पवित्र करने वाला मान कर उससे यह विनय करनी चाहिए कि "वह अपने पवित्र तेज से हमें भी पवित्र करें।"

यह बाहरी, भीतरी शुद्धता भी अनेक प्रकार की है। वैदिक युग की शिक्षा-पद्धति में सर्वांगीण शुद्धि के लिए बड़ा जोर दिया गया है। यह शुद्धि ब्रह्मचर्य आश्रम से ही आरंभ हो जाती है। आश्रमों में गुरु के पास बैठकर शिष्य को सबसे पहले सर्वांग शुद्धि का पाठ पढ़ना पढ़ता था। शिष्य से गुरु कहता था "हे शिष्य, मैं तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ, तेरी इन्द्रियों को शुद्ध करता हूँ और तेरे आचरण अथवा चरित्र को शुद्ध करता हूँ।"

पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और पांच प्राणों की शुद्धि के बाद ही चरित्र का निर्माण हो सकता है। मनु आदि धर्मशास्त्रियों ने आचार के द्वारा चरित्र-निर्माण का विधान किया है और उसका फल आयु, बल, विद्या, धन तथा द्रव्य की प्राप्ति बताया है।

संयम तथा ब्रह्मचर्य

वेद मंत्रों में संयम तथा ब्रह्मचर्य के पालनार्थ विशेष नियम बताये गये हैं। वहां ब्रह्मचर्य की महिमा का बखान करते हुए कहा गया है 'ब्रह्मचर्य तथा तप के द्वारा ही राजा अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकता है; ब्रह्मचर्य के ही कारण आचार्य, ब्रह्मचारी का निर्माण करता है।'

यह वेदोक्त ब्रह्मचर्य केवल उन्हीं लोगों के लिए नहीं है जो अविवाहित हैं। ब्रह्मचर्य का पालन विवाह न करने से नहीं, आत्मसंयम से होता है। इसलिए गृहस्थ भी आत्मसंयम द्वारा ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर सकता है। इस संयम और ब्रह्मचर्य से मौत को भी वश में किया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

गृहस्थों को संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का व्रत किस विधि से धारण करना चाहिए, इस संबंध में कहा गया है कि 'जिस प्रकार औषधि, वनस्पति आदि अपनी-अपनी ऋतु के अनुसार ही फूलती-फलती हैं वैसे ही गृहस्थों को भी ऋतु के अनुसार ही इन्द्रियों का सेवन करना चाहिए।' गृहस्थों के लिए ब्रह्मचर्य का यही विधान मनु महाराज ने इस श्लोक में कहा है :

ऋतौ-ऋतौ स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥

पाँच महायज्ञ

वैदिक धर्म के कर्मों और संस्कारों की समुचित व्याख्या सूत्रग्रंथों में की गयी है। मुख्य सूत्रग्रंथ तीन हैं, 'श्रौतसूत्र', 'गृह्यसूत्र' और 'धर्मसूत्र'। 'श्रौतसूत्र' में वेदों में कही गयी यज्ञ आदि की क्रियाओं को संपन्न करने के लिए नियम बताये गये हैं। 'गृह्यसूत्र' में घर में होने वाले उपनयन, विवाह आदि संस्कारों का वर्णन है। 'धर्मसूत्र' में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रमों के धर्मों का कथन है।

यद्यपि सूत्रग्रंथों में वैदिक यज्ञों के इक्कीस प्रकार बताये गये हैं, तथापि सर्व साधारण के लिए पांच महायज्ञों को नियमित रूप से करते रहने का विधान है। वे पांच महायज्ञ हैं :

१—ब्रह्मयज्ञ: ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर वहाँ के नियमों का पालन करना।

२—पितृयज्ञ: माता, पिता की आज्ञाओं का पालन करना।

३—अतिथियज्ञ: अतिथि का सत्कार करना।

४—भूतयज्ञ: सभी प्रकार के जीवों (भूतों) का पोषण करना।

५—देवयज्ञ: अग्नि में होम करके देवताओं को प्रसन्न करना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदों में यज्ञ का माहात्म्य केवल इसलिए नहीं स्वीकार किया गया है कि आग में हवन सामग्री तथा घी डालने से देवता प्रसन्न होते हैं और उनके द्वारा सुख-संपत्ति प्राप्त होती है। बल्कि वेदों में यज्ञ को 'श्रेष्ठतम कर्म' कहा गया है। वेदों के इस 'श्रेष्ठतम कर्म' यज्ञ का उद्देश्य एवं महत्त्व श्रीकृष्ण ने 'गीता' में स्पष्ट किया है। 'गीता' में चार प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं, जिनके नाम हैं : १ द्रव्ययज्ञ, २ तपोयज्ञ, ३ योगयज्ञ और ४ ज्ञानयज्ञ।

इस संबन्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है कि 'हे अर्जुन, अच्छे या बुरे, जितने भी कर्म किये जाते हैं, वे निश्चित ही मनुष्य को जन्म-मरण के चक्कर में डालने वाले होते हैं। पर यज्ञ के लिए जो कार्य किये जाते हैं वे बन्धन में नहीं डालते। अतः तुम यज्ञ के निमित्त से ही हमेशा कर्म किया करो।'

'गीता' के यज्ञ-विधान में बताता है कि परोपकार के लिए निष्काम भाव से जितने भी शुभ कर्म किये जाते हैं उन सब का नाम 'यज्ञ' है।

ईश्वरभक्ति और उसका फल

वैदिक कर्तव्यों में ईश्वरभक्ति एक आवश्यक विधान है। उत्तम मार्ग पर चलने के लिए, पापों से बचने के लिए और ज्ञानप्राप्ति के लिए ईश्वरभक्ति को आवश्यक बताया गया है। अपने आप को उस परमेश्वर के अर्पण करना ही भक्ति है। ऐसे भक्त की परमेश्वर स्वयं रक्षा करता है। वह पापों से सदा दूर रहता है और इसलिए पापों से उत्पन्न होनेवाली आपत्तियाँ भी भगवद्भक्त से दूर रहती हैं। परमेश्वर में निष्ठा रखने वाले पुरुष को अच्छी गति मिलती है।

ईश्वरभक्ति के फल का वर्णन एक मंत्र (ऋ० २।२४।३) में इस प्रकार किया गया है 'जो पुरुष श्रद्धायुक्त मन वाला होकर, भक्ति से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य, चन्द्र के तथा ज्ञानियों के पालक परमेश्वर की पूजा करता है उसको अच्छे मित्र, अच्छे सहायक प्राप्त होते हैं। वह धनधान्य से संपन्न होकर सुखी बना रहता है।'

परमेश्वर दयामय है। उसकी शरण में जाने वाले प्रत्येक पुरुष को नित्य सुख और अक्षय शांति प्राप्त होती है। वह परमेश्वर हमारा आराध्य, माता, पिता, बंधु तथा मित्र सब कुछ है। इन सांसारिक संबंधों से एक दिन मनुष्य को जुदा होना पड़ता है; किन्तु परमेश्वर जैसे मित्र से कभी साथ नहीं छूटता है। उसकी शरण में जाने के लिए कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है।
वैदिक यज्ञों का यही स्वरूप है।

सत्य का आचरण

वैदिक धर्म सत्य पर आधारित सत्यवादी मनुष्य का धर्म था। ऋग्वेद (१०।८५) के एक मंत्र में स्पष्टरूप से कहा गया है :

'सत्येनोत्तभिता भूमि : सूर्येणोत्तभिता द्यौः'

अर्थात् 'जिस प्रकार द्युलोक को सूर्य ने धारण किया हुआ है उसी प्रकार इस पृथ्वीलोक को सत्य ने धारण किया हुआ है'। इससे यह ज्ञात होता है कि यह पृथ्वी सत्य पर टिकी है और सत्य ही वैदिक युग का धर्म रहा है।

इसलिए अनेक मंत्रों में सत्य का संरक्षण करना आवश्यक बताया गया है। 'असत्य का परित्याग और सत्य का आचरण करने वाले पुरुष ही सच्चे अर्थों में ज्ञानी तथा विद्वान् है'। वेदों में असत्यवादी के लिए परमेश्वर और राजा की ओर से कठिन दण्ड देने का विधान है। कहा गया है 'उसको बार-बार दण्डित किया जाना चाहिए'। एक मंत्र में कहा गया है 'ये बस सज्जन और न्यायकारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोग सत्य के द्वारा असत्य को भगा देने वाले हैं। ये सत्यवादी लोग किसी से भी नहीं डरते।'

सत्य के लिए सर्वस्व दे देने वाले लोगों की भी वेदमंत्रों में स्तुति की गयी है। वहाँ ऐसे अनेक सत्यवादी लोगों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने कहा है 'सत्य के संरक्षण और ज्ञानियों के हित की रक्षा के लिए हम अपनी इस संपूर्ण संपत्ति को देने के लिए तैयार हैं।'

अतः वैदिक धर्म सत्य पर आधारित सच्चे मनुष्यों का सहज धर्म रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन धर्म के जन्मदाता चौबीस तीर्थंकर महात्मा

जैन

जैन विद्वानों ने 'जैन' शब्द का विशेष अर्थ बताया है। उनके कथनानुसार जिन्होंने काम, क्रोध आदि अठारह प्रकार के दोषों को जीत लिया है; जिन्होंने ज्ञान तथा दर्शन को ढक देने वाले और पापों को उभारने वाले पापों या कर्मशत्रुओं को जीत लिया है उन्हें 'जिन' कहा जाता है। जो उन पवित्र 'जिनों' के इच्छुक (उपासक) हैं उन्हें 'जैन' कहा गया (रागद्वेषादि दोषान् वा कर्मशत्रूञ्जयतीति जिनः, तस्यानुयायिनो जैनाः)।

तीर्थंकर

इस प्रकार के 'जिन' अब तक २४ हो चुके हैं। जैन धर्म के जन्मदाता इन्हीं महात्माओं को 'तीर्थंकर' कहा जाता है। धर्मरूपी तीर्थ का निर्माण करने वाले वीतराग तथा तात्वज्ञानी मुनिजन ही तीर्थंकर कहलाये। उनमें सबसे पहले ऋषभदेव और अन्तिम महावीर स्वामी थे। २४ तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं :

[१] आदिनाथ (ऋषभदेव), [२] अजितनाथ, [३] संभवनाथ, [४] अभिनन्दन, [५] सुमतिनाथ, [६] पद्मप्रभ, [७] सुपार्श्वनाथ, [८] चंद्रप्रभ, [९] सुविधिनाथ, [१०] शीतलनाथ, [११] श्रेयाँसनाथ, [१२] वासुपूज्य, [१३] विमलनाथ, [१४] अनंतनाथ, [१५] धर्मनाथ,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[१६] शांतिनाथ, [१७] कुन्थुनाथ, [१८] अरनाथ, [१६] मल्लिनाथ (मल्लिदेवी), [२०] मुनि सुव्रत, [२१] नभिनाथ, [२२] नेमिनाथ, [२३] पर्श्वनाथ और [२४] महावीर स्वामी ।

भगवान महावीर स्वामी

महावीर स्वामी की जीवनी, जैन धर्म के अनेक पुराणों में लिखी मिलती है । 'महावीर पुराण' उन्हीं पर लिखा गया है । तदनुसार उनकी जीवनी इस प्रकार है ।

तीर्थंकर महावीर स्वामी के माता-पिता का नाम क्रमशः त्रिशलादेवी और सिद्धार्थ था । सिद्धार्थ एक पराक्रमी राजा हुए, जो महाज्ञानी, जैन धर्म के परम भक्त और बड़े दानी थे । हरिवंश या नाथवंश में उनका जन्म हुआ । त्रिशलादेवी उनकी पटरानी का नाम था । वह वृज्जि गणराज्य के सभापति एवं लिच्छवी वंशीय क्षत्रिय राजा चेटक की पुत्री थी । महारानी त्रिशला अत्यन्त गुणवती, रूपवतीं, जैन धर्म की भक्त और पतिव्रता स्त्री थी । त्रिशला का एक नाम प्रियकारिणी भी था । अपने पूर्व जन्म में संचित पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही उनको, महावीर जैसा महान् संत पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था ।

एक पवित्र रात्रि को, जब देवी त्रिशला सो रही थीं, उन्होंने स्वप्न में सोलह शुभ लक्षणों को देखा । ये शुभ लक्षण, भगवान् महावीर के गर्भ में आने की सूचना थी । आषाढ़ शुक्ला ६, उतराषाढ़ नक्षत्र में वे माता त्रिशला के गर्भ में आये । जब तक वें माता के गर्भ में रहे तब तक स्वर्ग की अप्सरायें आकर माता त्रिशला को नाना प्रकार की मनोरम कथाओं को सुनाकर उनका मन बहलाती रहीं ।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी ५३६ वि० पूर्व को महावीर स्वामी का जन्म हुआ । सुवर्ण के समान शरीर का रंग, दीप्तिमान् मुखमण्डल और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुदृढ़ शरीर महावीर के जन्म लेते ही देवताओं ने उन्हें क्षीरसागर में स्नान कराया। उनका नाम रखा गया वर्द्धमान।

अपने पूर्व संस्कारों के कारण वर्द्धमान सब शास्त्रों में पारंगत होकर पैदा हुए थे। अतः उनको किसी भी गुरु के पास अध्ययन के लिए न जाना पड़ा। जब वे आठ वर्ष के हुए तो उन्होंने गृहस्थों के बारह व्रतों को ग्रहण किया।

वर्द्धमान जब कुमार थे तभी से उनमें अद्भुत साहस और वीरता दिखायी देने लगी थी। एक समय सौधर्म इन्द्र ने अपनी भरी सभा में कुमार की वीरता की प्रशंसा की। इस पर संगम नामक एक देवता को विश्वास न हुआ। वह काले नाग का रूप धारण कर उस पेड़ पर जाकर लिपट गया, जिसमें वर्द्धमान चढ़े हुए थे। वहां अन्य राजकुमार भी खेल रहे थे। उन्होंने सर्प को देखते की रोना-पीटना शुरू किया। किन्तु कुमार जरा भी न घबड़ाये। वे उस सर्प को पकड़ कर उसके साथ खेलने लगे। कुमार के इस साहस एवं निर्भीकता को देख कर सर्परूपधारी देवता बड़ा प्रसन्न हुआ और कुमार की वंदना करके वह स्वर्ग लौट आया।

क्योंकि कुमार को भक्ति, श्रुति और अवधि तीनों प्रकार का ज्ञान पूर्व जन्म से ही प्राप्त था। अतः मनुष्य जन्म में आकर संसार के आकषणों ने उनके मन को अपनी ओर न खींच सका। वे जल में कमल की भांति संसार से निर्लिप्त रहने लगे। इसी उदासीन एवं विरक्त दशा में वे ३० वर्षों तक राज्य का भार संभाले रहे। विवाह की ओर उनका बिल्कुल ध्यान ही न था। उन्होंने बाल ब्रह्मचारी रहकर ही पवित्र जीवन बिताया।

एक दिन सहसा उनके मन में तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। उन्होंने सोचा 'मैंने इस जगत् में भील, मारीच राजपुत्र और पशु आदि योनियों में जन्म लेकर व्यर्थ ही इतने कष्ट झेले। मुझे कहीं भी आनंद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न मिला। मैंने इतने दिन इस जाल में पड़कर वृथा खो दिये। पाप के समान इस गृह-बंधन को मुझे छोड़ देना चाहिए।' ऐसा विचार कर स्वामी जी ने निश्चय किया कि इस गृहवास के कैदखाने को छोड़-कर तपोवन में जाना चाहिए।

उनके मन की उदासी बढ़ती ही गयी। कुटुम्बियों के प्रति उनकी ममता कम होने लगी। उन्होंने चिन्तन करना आरंभ किया। गृहत्याग के सम्बन्ध में उन्होंनें विचार किया 'यदि इस अपवित्र शरीर से पवित्र गुणों के समूह 'केवल ज्ञान' तथा 'केवल दर्शन' आदि प्राप्त हो सकते हैं तो गृत्याग में देर करने की आवश्यकता ही क्या है?' देवताओं ने आकर स्वामी जी के इन विचारों का समर्थन किया। भगवान् उसी समय राज-पाट, माता-पिता, कुटुम्ब और सर्वस्व को त्याग कर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से वन की ओर चल दिये।

पिता पूर्ण ज्ञानी थे। उन्हें संतोष हुआ। किन्तु माता में मोह था। वे अपनी सखियों के साथ रोती-कलपती अपने पुत्र के पीछे-पीछे चल दीं। लोगों ने त्रिशला को समझाया। उन्हें संसार का ज्ञान बताया। तब वे किसी प्रकार आश्वस्त होकर सखियों सहित घर की ओर लौटीं।

तदनन्तर भगवान् महावीर ने अपने हाथों अपने समस्त मूँछ तथा दाढ़ी के बाल उखाड़ फेंके और मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को बच्चों की तरह नग्न होकर मुनि बन गए।

इधर-उधर आत्मा चिंतन में भटकने के बाद वे उज्जयिनी के श्मशान में पहुँचे और वहीं बैठ कर तप में लीन हो गये। उन दिनों उज्जयिनी में ११वें रुद्रस्थाणु (शिव) विराजमान थे। उनकी स्त्री का नाम पार्वती था। पहले उन्होंने बड़ा तप किया था। तप में लीन महावीर स्वामी को देखकर उन्होंने उनकी परीक्षा लेने की सोची।

रुद्र ने सर्प, बिच्छू, धूल, मिट्टी, पानी, स्त्री, पिशाच आदि अनेकों रूप धारण कर महावीर स्वामी को विचलित करना चाही; किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महावीर उसी प्रकार अडिग बने रहे। उन्होंने अपनी आत्मा को जान लिया था और शरीर को सर्वथा अलग कर के उसके कष्टों को जीत लिया था। रुद्र परीक्षा में हार गये। उन्होंने क्षमा याचना की।

उज्जयिनी से वे कौशाम्बी गये। वहां उन्होंने वृषभसेन नामक एक धर्मात्मा सेठ के यहाँ आहार किया। उसके बाद वे घूमते-घूमते 'जंभिका' नामक गांव के बाहर 'ऋजुकूला' नामक नदी के किनारे पहुँचे। वहीं 'शालमू' वृक्ष के नीचे उपयुक्त स्थान जानकर वे ध्यान में खो गये। उस वृक्ष के नीचे रहकर स्वामी जी ने 'घातिया' कर्मों को नष्ट कर 'केवल ज्ञान' प्राप्त किया।

भगवान् के पूर्ण ज्ञानी हो जाने पर एक बार इन्द्रादि देवताओं ने उत्सव आयोजित किया और भगवान् को सिंहासन पर बैठाया। उनके दर्शनार्थ विदेह देश के इन्द्रभूति, वायुभूति और अग्निभूति नामक उस समय के दिग्गज विद्वान् वहां आये और उनके शिष्य बन गये।

प्रभु के शिष्यों में २८,००० मुनि, ३६,००० अर्जिकाएँ, १,००००० श्रावक और ३,००००० श्राविकायें थीं। सबमें मुख्य इन्द्रभूति थे, जिनका नया नाम गौतम स्वामी हुआ। सुधर्मा, वायुभूति तथा अग्निभूति आदि ११ गणधर हुए। अर्जिकाओं में मुख्य सती चन्दना थी।

जीवों के लाभ के लिए भगवान् दिन-रात में चार बार उपदेश किया करते थे। उस उपदेश को देव, देवी, मनुष्य, पशु आदि समस्त जीव बैठकर अपनी-अपनी भाषाओं में सुना करते थे। श्रोताओं में मुख्य श्रोता राजगृह नगर के अधिपति राजा श्रेणिक थे।

निरन्तर ३० वर्ष तक भगवान् ने देश के विभिन्न अंचलों का पैदल भ्रमण कर अपने उपदेशों द्वारा धर्म का प्रचार किया। उनके उपदेशों को बाद में गौतम स्वामी ने 'आचारांग' आदि बाहर बृहद् ग्रंथों में निवद्ध किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रातःकाल ४६७ वि० पूर्व में विहार प्रदेश के पावापुरी वन में भगवान् मुक्तिधाम को सिधारे। यह स्थान विहार स्टेशन से छह मील की दूरी पर है। जैनधर्म का वह पवित्र तीर्थ है। गाँव के बाहर सरोवर के बीच में एक जैन मंदिर है उसमें भगवान् की चरण पादुकायें शोभित हैं। प्रति वर्ष वहां भगवान् के निर्वाण दिवस (कार्तिक कृष्णा अमावस्या) को मेला लगता है।

इस प्रकार ७२ वर्ष की आयु भोगने के बाद ४६७ वि०पूर्व में महावीर स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन धर्म

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व, अर्थात् ईसा की पांचवीं-छठी शताब्दी पूर्व वैदिक धर्म के विरोध में एक बड़ी क्रांति हुई थी। उसके नेता थे महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध। इस क्रांति का एक मात्र उद्देश्य था समाज में प्रचलित धर्म में आमूल परिवर्त्तन करना।

महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध से पहले सारी धार्मिक व्यवस्था पुरोहितों के हाथ में थी। ये पुरोहित वैदिक धर्म के अनुयायी थे और उसकी आड़ में जो कुछ जब चाहते वैसा ही कर डालते थे। यहां तक कि यज्ञ में पशुओं को मारने तक को उन्होंने उचित बताया था।

वैदिक धर्म की इन बुराइयों को देखकर सारी धार्मिक व्यवस्था इन दोनों क्षत्रिय कुमारों ने अपने हाथ में ले ली। वस्तुतः देखा जाय तो वामन और परशुराम के अतिरिक्त जितने भी अवतार हुए वे सभी क्षत्रिय वंश में पैदा हुए थे इस दृष्टि से ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच धर्म के मामलों को लेकर बड़ा संघर्ष होता रहा।

यह एक विचित्र संयोग की बात है कि संसार के अनेक देशों के इतिहास में ईसा पूर्व छठी शताब्दी एक नया संदेश लेकर आयी। इस शताब्दी में सभी देशों की पुरानी धर्म-व्यवस्था की जगह नये धर्मों की स्थापना हुई। चीन में लाओत्से तथा कन्फ्यूशियन ने, यूनान में परमेनाइडोस एवं एम्पेडोकल्स ने, ईरान में जरथुस्त्र ने और भारत में महावीर तथा बुद्ध ने प्रायः एक ही समय इस धार्मिक क्रांति का नेतृत्व किया।

जैन धर्म के दो मुख्य संप्रदाय

जैसे भगवान् तथागत की निर्वाण प्राप्ति के बाद बौद्ध धर्म में अनेक दल बन गये थे वैसे ही महावीर स्वामी के बाद जैन धर्म में भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक मतभेदों के कारण दो दल बन गये, जिनके नाम थे श्वेताम्बर और दिगम्बर। जैन धर्म के इन दोनों पंथों का बड़ा रोचक वृत्तान्त है।

जैन धर्म की पुस्तकों में लिखा है कि महावीर स्वामी के नौ प्रकार के शिष्य थे, जिन्हे नौ 'गण' कहा जाता था। उनमें जो सबसे बड़ा होता था वह 'गणधर' के नाम से प्रसिद्ध था। इन शिष्यों ने जैन धर्म की उन्नति के लिए अच्छा कार्य किया।

महावीर स्वामी की शिष्य-परम्परा में जिन शिष्यों ने 'संघ' का कार्य अच्छी तरह से चलाया उनमें आर्य भद्रबाहु का नाम याद रखने योग्य है। ३१७ ई० पूर्व में उन्होंने संघ का कार्य अपने हाथों में लिया सात वर्षों तक संघ की हर तरह से उन्नति करने के बाद इस कार्य को उन्होंने अपने शिष्य स्थूलभद्र को सौंप दिया। स्वयं वे दक्षिण चले गये। भद्रबाहु के चले जाने के बाद स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र (पटना) में जैन साधुओं की एक बहुत बड़ी सभा को बुलाया। उस सभामें जैन धर्म के अंगग्रंथों का संग्रह करने के लिए योजनाएँ बनायी गयीं।

कई दिनों बाद भद्रबाहु जब दक्षिण की यात्रा से वापिस आये तो उनके आगे पाटलिपुत्र की सभा द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावों को स्वीकृति के लिए रखा गया। भद्रबाहु ने उनको मानने से इन्कार कर दिया। उसके कई कारण थे।

भद्रबाहु की अनुपस्थिति में एक नयी बात और हुई। स्थूलभद्र की आज्ञा से जैन साधुओं ने वस्त्र पहनना आरंभ कर दिया था। भद्रबाहु को यह बात भी न रुची। फलतः यह विवाद बढ़ता ही गया। अंत में भद्रबाहु अपने शिष्यों को साथ लेकर वहां से चल दिये। उन्होंने अपनी पुरानी परम्परा को ही बनाये रखा। इस प्रकार जैन साधुओं के बीच दो दल बन गये। एक श्वेताम्बर और दूसरा दिगम्बर जैनियों के इन दोनों सम्प्रदायों का जन्म ३०० ई० पूर्व में हो चुका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। भद्रबाहु का परलोकवास २९७ ई० पूर्व में और स्थूलभद्र का २५२ ई० पूर्व में हुआ।

इस प्रकार जैन धर्म के मुनि-समाज में रहन-सहन और विचार की दृष्टि से दो दल बन गये। आगे-आगे वे एक दूसरे से दूर होते गये। आज भी उनमें पहले की तरह मतभेद बना हुआ है।

जैन धर्म की अनेक शाखायें

जैन धर्म के उक्त दो पंथों से अनेक शाखायें फूटीं। बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म का आरंभ भी एक ही उद्देश्य को लेकर हुआ था। किन्तु बाद में उसके अनेक फिरके हो गये। उनके कारण उसके विकास में बाधा हुई। दूर से देखने पर यही मालूम होता है कि अनेक शाखा-सम्प्रदायों में बंट जाने से जैन धर्म और बौद्ध धर्म ने बड़ी उन्नति की; कुछ हद तक यह ठीक भी है लेकिन इन अनेक शाखा संप्रदायों का वास्तविक परिणाम यह हुआ कि उनकी गति रुक गयी, जिससे वे आगे न बढ़ सके।

जैन धर्म की उन सभी शाखाओं के कारण और नाम गिनाने संभव नहीं हैं। उनमें प्रमुख शाखाओं के ये नाम हैं : मूलसंघ, काष्ठासंघ, तेरापंथ, यापनीय संघ, गौड़संघ, मयूरसंघ, निर्ग्रन्थसंघ, कूर्चकसंघ, पुन्नाटसंघ, सेनान्वय, तापगच्छ, और बागडगच्छ आदि।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म की एकता

जैन धर्म और बौद्ध धर्म, भारत के धार्मिक इतिहास के मुख्य धर्म रहे हैं। इस देश के सामाजिक उत्थान में इन दोनों धर्मों का बड़ा ऊँचा स्थान रहा है। बौद्ध धर्म यद्यपि अपनी जन्मभूमि भारत से मिट-सा गया है। किन्तु संसार के अनेक देशों में जीवित रहकर आज भी वह भारत के नाम को उज्वल बनाये हैं। जैन धर्म ने यद्यपि अपना उतना विकास नहीं किया; फिर भी भारत में आज भी उसकी, पहले की तरह, स्थिति बनी हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि जैन और बौद्ध, दोनों धर्मों का उदय एक ही उद्देश्य को लेकर हुआ था, इसलिए अनेक बातों में वे समानता लिए हैं। एक-दूसरे से उन्होंने जो लिया-दिया है उसके कारण उनकी एकता का पता चलता है। 'जिन' और 'वीर' इन आदरसूचक शब्दों को महावीर स्वामी तथा उनके पहले हुए तीर्थंकर महात्माओं के लिए कहा जाता था। बौद्धधर्म के ग्रंथों में ये नाम बुद्ध के कहे गए हैं। 'बुद्ध' पापकर्मों को जीतने वाले थे। इसलिए उनको 'जिन' कहा गया। इसी प्रकार 'वीर' कह कर बुद्ध की प्रार्थना की गयी है। जैन साधुओं को 'श्रमण' कहा जाता है। बौद्धभिक्षु भी अपना परिचय 'श्रमण' कह कर दिया करते थे। पालि साहित्य में जैन धर्म के अनुयायियों को निगण्ठ (निर्ग्रंथ) कहा गया है। इसी आधार पर बाद के जैन ग्रंथकारों ने महावीर स्वामी को 'नगण्ठ नादपुत्र' (निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र) कहा। यही नहीं, बल्कि महावीर स्वामी के मुख्य उपदेशों को बौद्धग्रंथों में ज्यों-का-त्यों उतारा गया है।

यही कारण था कि यूरोप के देशों में बहुत दिनों तक इन दोनों धर्मों को एक ही धर्म माना जाता रहा। बल्कि भारतीय धर्म पर लिखने वाले बार्थ जैसे विद्वानों ने महावीर और बुद्ध को एक ही व्यक्ति समझने का भ्रम किया।

विचारों की दृष्टि से जैन और बौद्ध, दोनों धर्मों को नास्तिक कहा गया है। नास्तिक उन्हें इसलिए कहा गया कि वे वेदों को नहीं मानते हैं। किन्तु वेदों को न मानने के अलावा ये दोनों धर्म वैदिक धर्म के ही उद्देश्यों पर बल देते हैं। वास्तव में देखा जाय तो जैन और बौद्ध, दोनों धर्म नास्तिक और आस्तिक विचारों के बीच के धर्म हैं।

जैन और बौद्ध, दोनों धर्मों के विचारक एक स्थिर चैतन्य पर विश्वास करते हैं। दोनों ही अहिंसा पर बल देते हैं। दोनों को वेदों

की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं है। व्यवहार तथा नीति की दृष्टि से जैन दर्शन के तीन रत्नः सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चारित्र्य को मोक्ष कहा गया है। सत्य, अहिंसा, चोरी न करना (अस्तेय) और ब्रह्मचर्य के लिए जैन और बौद्ध एक जैसी दृष्टि रखते हैं। इसी प्रकार बौद्धों की मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के आचारणों को जैन धर्म में जैसे का तैसा स्वीकार किया गया है।

जैन धर्म और वैदिक धर्म की एकता

जैन धर्म और वैदिक धर्म में कोई अन्तर नहीं है। दोनों धर्मों में यदि मतभेद है तो इस बात का कि जैन धर्म, वैदिक कर्मकाण्ड के निर्देशों तथा उसके हिंसा-संबंधी विधानों को नहीं मानता और वैदिक धर्म वैदिक निर्देशों को ही अंतिम प्रमाण मानता है।

जैन धर्म का यह उद्योग रहा है कि समाज में अहिंसा का प्रचार हो। इसके लिए पहली आवश्यकता वैदिक धर्म का खंडन करना थी। समाज संभवतः पुरोहितों के बढ़ते हुए प्रभाव को और उनकी स्वेच्छाचारिता को सहन भी कर लेता; किन्तु वेदों पर उसका अटल विश्वास था। वेदों के लिए समाज के इसी अटल विश्वास को डिगाने के लिए जैनियों ने अहिंसा का आधार लिया। उधर पुरोहितों के हिंसा-कार्यों से समाज भीतर-ही-भीतर असंतुष्ट था। पुरोहितों के लिए समाज की इस दबी हुई अरुचि को, हिंसा की आवाज लगाकर जैनों ने सारे समाज को अपने साथ कर लिया।

महावीर स्वामी ने अपने और अपने से पूर्व हुए तीर्थंकारों के विचारों को समाज के सामने इस सरल ढंग से रखा कि लोग बरबस ही उधर खिंच आये। महावीर स्वामी ने वेदों में कही गयी अहिंसा की बातों तथा तप एवं उपासना की बातों को समाज में रखा। साधना और वैराग्य के विचार उन्होंने ब्राह्मण दर्शन, वेदान्त से लिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'अहिंसा परमो धर्मः'—अहिंसा ही सबसे बढ़कर धर्म है। इस बात को वैदिक, जैन और बौद्ध, तीनों धर्मों में एक तरह से माना गया है। जैन धर्म के तीन रत्नः सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र; वैदिक धर्म के भक्तियोग, ज्ञानयोग, और कर्मयोग का ही दूसरा रूप है। जैन धर्म मूल रूप से वैदिक धर्म और विशेष रूप से वैष्णव धर्म के अधिक निकट है।

इसी प्रकार छह वैदिक दर्शनों से जैन दर्शन की अनेक बातें एक जैसी हैं। आत्मा और मोक्ष की दृष्टि से जैन तथा बौद्ध दर्शनों की वैदिक दर्शनों के साथ अक्षरशः एकता है।

यही नहीं, सनातन धर्मानुयायियों के २४ अवतारों की भाँति जैनियों के भी २४ तीर्थंकर हुए। इसी प्रकार वैदिक धर्मावलम्बियों की ७ पुरियों की भांति जैनों के भी ७ तीर्थस्थान हैं। उनके सात तीर्थस्थानों के नाम हैं: १ गिरनार, २ राजगृह, ३ पावापुर, ४ चम्पापुर, ५ पगलिताना, ६ आबू और ७ सम्भेद शिखर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैन धर्म के मुख्य ग्रंथ

पहले भी संकेत किया जा चुका है कि आचार्य भद्रबाहु के दक्षिण यात्रा पर चले जाने के बाद आचार्य स्थूलभद्र ने पटना में विद्वानों की एक सभा बुलायी थी। इस पंडित सभा में जैनों के अंगग्रंथों का संग्रह और संपादन हुआ। जब आचार्य भद्रबाहु वापिस आये तो उनके सामने पंडित सभा द्वारा स्वीकृत बातों को रखा गया। आचार्य ने उनको मानने से इन्कार कर दिया। यह बात ३०० ई० पूर्व की है; आज से लगभग २२-२३ सौ वर्ष पहले की।

इस सभा के लगभग साढ़े सात-सौ वर्ष बाद ४५४ ई० को भावनगर (गुजरात) के समीप बलभी नामक स्थान में श्रीआचार्य देवधर्मा की अध्यक्षता में जैन मुनि समाज ने दूसरी परिषद् का आयोजन किया। इस परिषद् या सभा में, पहली परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों पर फिर से विचार किया गया। बड़े वाद-विवाद के बाद भी जैनों के दोनों दलों में एकता न हो सकी।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के बारह अंगग्रंथ

भावनगर की सभा में श्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्यों ने १२ अंग ग्रंथों या आगमग्रंथों का संकलन किया। वे ही आज भी माने जाते हैं। उनके नाम हैं: (१) आचारांगसुत्त (आचारागंसूत्र), (२) सूर्यगंडक (सूत्रकृतांग), (३) थाणांक (स्थानांग), (४) समवायांग, (५) भगवती सूत्र, (६) नायाधम्म कहाओ (ज्ञातधर्मकथा), (७) उवासगदसाओ (उपासकदशा), (८) अंतगड़दसाओ (अंतकृद्दशा), (६) अणुतरोववाइयदसाओं (अनुत्तरौपपादिकदशा), (१०) पण्हावागरणिआहं (प्रश्न व्याकरणानि), (११) विवागसुयं (विपाकश्रुतं) और (१२) दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)। इनमें से कुछ ही ग्रंथ आज मिलते हैं।

बारह उपांगग्रंथ

इन १२ अंगग्रंथों के उतने ही उपांगग्रंथ भी हैं, जिनके नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है : (१) औपपातिक, (२) राजप्रश्नीय, (३) जीवाभिगम, (४) प्रज्ञापणा, (५) सूर्यप्रज्ञप्ति, (६) जंबूदीपप्रज्ञप्ति, (७) चंद्रप्रज्ञप्ति, (८) निर्यावलिका, (९) कल्पावतंसिका, (१०) पुष्पिका, (११) पुष्पचूलिका और (१२) वृष्णिदशा।

दश प्रकीर्ण ग्रंथ

श्वेताम्बरों के अंग-उपांग ग्रंथों का ऊपर निर्देश किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त श्वेताम्बरों के प्रकीर्ण ग्रंथ भी हैं। जैनों के धार्मिक साहित्य में इनका बड़ा संम्मान है। ये प्रकीर्ण ग्रंथ संख्या में १० हैं। उनके नाम है : (१) चतुःशरण, (२) आतुरप्रत्याख्यान, (३) भक्तिपरिज्ञा, (४) संस्तार, (५) ताण्डुलवैतालिक (६) चंद्रवेध्यक, (७) देवेन्द्रस्तव, (८) गणितविद्या, (९) महाप्रत्याख्यान और (१०) वीरस्तव।

तीन सूत्र

इनके अतिरिक्त छेदसूत्र, मूलसूत्र और चूलिकासूत्र भी उनके प्राचीन ग्रंथ हैं।

चार वेद

जैनों के चार वेदों के नाम हैं : (१) प्रथमानुयोग, (२) चरणानुयोग, (३) करणानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

चौबीस पुराण

वैदिक धर्म के अठारह पुराण बताये गये हैं। उसी प्रकार जैन धर्म के भी चौबीस पुराण हैं। इन चौबीस पुराणों में चौबीस तीर्थंकर महात्माओं की कथायें हैं। उन्हीं के नाम से इन पुराणों का नामकरण किया गया है। इन चौबीस पुराणों में प्रसिद्ध पुराणों के नाम हैं : आदि पुराण, पद्म पुराण, अरिष्टनेमि पुराण (जिसे हरिवंश पुराण भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते हैं) और उत्तरपुराण। इनमें भी आदि पुराण और उत्तर पुराण का विशेष महत्त्व है।

आदि पुराण

इस पुराण में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर महात्मा ऋषभदेव की कथाएँ हैं। महात्मा ऋषभदेव जी के संबंध में जैन परम्परा है कि उनका जन्म सर्वार्थसिद्धि योग, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, धनराशि और चैत्रमास की कृष्णाष्टमी को विनीता नामक नगरी में हुआ था। वे इक्ष्वाकुवंश के थे। उनके पिता का नाम राजा नाभि और माता का नाम मरुदेवी था। 'भागवत' पुराण में भी इनके माता-पिता के यही नाम बताये गये हैं। कहा जाता है कि तीर्थंकर ऋषभदेव चौरासी लाख वर्ष (चतुर्युगी) तक जीवित रह कर मोक्ष को प्राप्त हुए थे। इस पुराण को आचार्य जिनसेन ने आठवीं शताब्दी ई० में लिखा था।

उत्तर पुराण

यह पुराण आदि पुराण का ही उत्तरार्ध भाग है। आचार्य जिनसेन ४४ सर्ग लिखने के बाद ही परलोकवासी हो गये थे। अन्त के तीन सर्गों को जिनसेन के शिष्य गुणभद्र ने लिखा था।

उत्तर पुराण वस्तुतः जैनों के २४ पुराणों की सूची है। उसमें सभी पुराणों का सार संकलित है। इस पुराण में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ जी से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी तक के संक्षिप्त आख्यान वर्णित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन धर्म के मुख्य नौ तत्त्व

जैन धर्म में नौ प्रकार के मुख्य तत्त्व माने गये हैं, जिनके नाम हैं: १ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ वंध, ५ संवर, ६ निर्जरा, ७ पुण्य, ८ पाप और ६ मोक्ष।

जीव अजीव

जिन पदार्थों में चेतना है वे 'जीव' कहलाते हैं। यह जड़ शरीर तथा इसी की तरह दूसरे जड़ पदार्थ 'अजीव' हैं। जीव और अजीव, दोनों के संबंध में आगे अलग से भी लिखा गया है।

आस्रव

अच्छे तथा बुरे कर्मों के द्वार को 'आस्रव' कहते हैं। 'स्रव' नाम 'बहने' का है। आत्मा की ओर कर्मों का बहना ही 'आस्रव' है। जिस प्रकार गंदा पानी नाले से बहकर तालाब में गिरकर तालाब को गंदा कर देता है उसी प्रकार संसार के विषय इन्द्रियों के नाले से बहकर आत्मा में प्रवेश करते हैं और उसको मलिन कर देते हैं।

वंध

आत्मा का कर्मों में और कर्मों का आत्मा में मिल जाना ही 'कर्मवंध' है। जिस प्रकार पुरानी लकड़ी को अग्नि जल्दी ही जला देती है उसी प्रकार राग से रहित होकर और क्रोध का परित्याग करके जीव अपने कर्मों को जल्दी ही नष्ट कर देता है।

संवर

आत्मा में कर्मों का प्रवेश न होने देना ही 'संवर' कहलाता है। 'संवर' का अर्थ है रोकना। भले, बुरे कर्मों के आस्रव (धारा) को आत्मा में जाने से जो रोक देता है, वही 'संवर' है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्जरा

कर्मों के प्रभाव को तप आदि साधनों के द्वारा निर्जरण कर डालना, अर्थात् ऐसे उपाय करना, जिनसे कर्म क्षय हो जाय, 'निर्जरा' है।

पाप

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, उद्दण्डता का व्यवहार करना और मांगना, ये सभी पाप हैं।

पुण्य

इनके विपरीत, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अक्रोध और अपरिग्रह, ये पुण्य हैं।

मोक्ष

जीव से लेकर पाप तक के आठ कर्म जीवों के गुणों को ढाँप लेते हैं। उनका नाश कर देना ही 'मोक्ष' है।

कर्मों के नाश करने के तीन साधन

इन आठ प्रकार के कर्मों को तीन तरह के साधनों या उपायों द्वारा नष्ट किया जा सकता है। ये तीन साधन हैं; १. सम्यक् दर्शन, २. सम्यक् ज्ञान और ३ सम्यक् चारित्र। इन तीनों का एक ही नाम 'रत्नत्रयी' (तीन रत्न) है।

जीव से लेकर पाप तक के आठ कर्मों में किसी प्रकार की रुचि न रखना 'सम्यक् दर्शन' है। धर्म का ऐसा ज्ञान, जिसमें संदेह तथा भ्रम न हो, यथार्थ ज्ञान ही 'सम्यक् ज्ञान' है। निर्दोष तथा पवित्र आचरण ही 'सम्यक् चारित्र' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीव और अजीव

जीव

चेतन द्रव्य को जीव या आत्मा कहते हैं। संसार की दशा में आत्मा जीव कहलाता है। उसमें प्राण, शरीर, मन तथा इन्द्रिय आदि शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं।

विशुद्ध दशा में जीव ज्ञान और दर्शन से युक्त हैं। जीव में अविद्या (अज्ञान) होती है, जिसके कारण वह कर्मों के फेर में पड़ कर बन्धन से बंध जाता है। तभी उसको 'बद्ध' कहा जाता है। उसमें 'संकोच' और 'विकास' दो प्रकार के गुण होते हैं। उन्ही के कारण वह हाथी के शरीर में प्रवेश कर हाथी जितना बड़ा भी हो जाता है और चींटी के शरीर में प्रवेश कर चींटी जितना छोटा भी हो जाता है। जिस भी शरीर में वह प्रवेश करता है उसी का रूप ले लेता है। उसका अपना कोई रूप नहीं है।

बन्धन से छूट जाने पर जीव में ज्ञान का उदय होता है और तब वह मुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

जीव प्रतिक्षण बदलता रहता है। उसका एक क्षण में जो स्वरूप है, दूसरे क्षण में वह दूसरा ही स्वरूप धारण कर लेता है। जीव चार तरह के हैं : दिव्य जीव, मानुष जीव, नारकीय जीव और तिर्यक् जीव।

जीव के मुख्य दो भेद हैं : बद्ध और मुक्त। बद्ध जीव संसारी है और मुक्त जीव ज्ञानी।

बद्ध जीव के 'त्रस' (जंगम) और 'स्थावर' दो भेद हैं। जिन जीवों में एक से अधिक इन्द्रियाँ होती हैं वे 'त्रस' कहलातें हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, नारकीय, ये सभी 'त्रस' जीव हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'स्थावर' जीवों में केवल त्वचा इन्द्रिय होती है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और पेड़-पौधे 'स्थावर' जीव हैं।

अजीव

अजीव द्रव्य वे हैं, जिनका शरीर अजीवों में होता है। धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल, इनको अजीव द्रव्य कहा गया है। ये अजीव द्रव्य नष्ट नहीं होते। सदा बने रहते हैं।

कर्मों का परित्याग

जीव को अपने किये हुए भले-बुरे कर्म स्वयं भोगने पड़ते हैं। चाहे आपना कुटुम्बी ही क्यों न हो, उनको भोगने के लिए हाथ नहीं बँटाता। सब प्रकार के जीव कर्म के अधीन हैं। कर्म किसी को भी क्षमा नहीं करता।

अपने इस जीवन के लिए; यश, मान, सत्कार के लिए; जन्म, मृत्यु, दुःख से छुटकारा पाने के लिए; मनुष्य को अनेक प्रकार की क्रियाओं में प्रवृत्त होना पड़ता है।

मैंने किया, मैंने करवाया, करते हुए दूसरे का अनुमोदन किया; मैं करता हूँ, करवाता हूँ, करते हुए का अनुमोदन करता हूँ; मैं करूँगा, मैं करवाऊँगा, करते हुए का अनुमोदन करूँगा;—संसार में समस्त कार्यों के इतने ही रूप होते हैं। इनसे अधिक नहीं।

यह दिखाई देने वाली सारी लीला कर्म की है। प्रत्येक जीव मोह के नशे में माता, पिता आदि के संबंधों को सच्चा मानकर अनन्त काल से दुःखों के सागर में गोता लगाता आ रहा है और आगे के लिए उसी नरककुण्ड में जाने के लिए कर्म कर रहा है। जीव की यह सबसे बड़ी भ्रांति है, और इसी भ्रांति के कारण वह अपने वास्तविक कल्याण को नहीं पहचान पा रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म एक भ्रांति है

जैनों की दृष्टि से कर्म ही भ्रांति है। अन्य दर्शनों में जिसको माया, प्रपंच, प्रारब्ध, संचित तथा अदृश्य आदि भिन्न-भिन्न नामों से कहा गया है वह कर्म ही है। इसी के कारण धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझने की भ्रांति होती है।

कर्मभ्रांति का नाश

इस भ्रांति का नाश करने के लिए भगवान् ने कहा है 'हे मनुष्यों, तुम पापकर्मों से मुक्त हो जाओ' (पुरिसो रम पावकम्मणा)। यह जीव कर्मों के वंश में है। इसलिए प्रतिक्षण वह दुःखी है। कभी-कभी जीव दुःखों को दुःख नहीं समझता, क्योंकि दुःखों को सहने का उसे अभ्यास हो जाता है। ये दुःख यदि ज्ञानपूर्वक वैराग्य से सहे जाँय तो कल्याण हो सकता है।

कर्मों की भट्टी में चढ़ा हुआ जीव सुख-दुःख को उल्टा करके देखता है। उदाहरण के लिए भिक्षा मांगना एक सामाजिक बुराई है; किन्तु साधुओं के लिए वही उचित बताया गया है। इसी प्रकार भूमि पर सोना दरिद्रता का लक्षण है; किन्तु साधु के लिए भूमिशयन ही उचित बताया गया है। संसार में जिनको सुख कहा जाता है, वैराग्य में वे ही दुःख है। वास्तविक सुख वह है, जिसका अन्त भी सुख ही हो। इसी प्रकार वास्तविक दुःख वही है, जिसका अन्त भी दुःख ही हो। जिस दुःख का अन्त सुख में है वही वास्तविक सुख है। इसी प्रकार जिस सुख का अंत दुःख में है वही वास्तविक दुःख है।

यह जानते हुए भी कि मनुष्य निराधार है, वह प्रशंसा, सम्मान, सत्कार आदि के लिए नित्यप्रति पृथ्वी में रहने वाले (पृथ्वीकाय) अनन्त जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से करवाता है और करने वालों का समर्थन करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म के स्वरूप को जान कर, कर्म की जड़ हिंसा को मान कर और सब उपायों द्वारा राग-द्वेष से दूर हटकर 'संयम' का अभ्यास करना चाहिए।

'मैंने आशक्त होकर बड़े पापकर्म किए हैं' ऐसा सोच कर सत्य में दृढ़ विश्वास करना चाहिए। सत्य में जिसका अडिग विश्वास है वह सभी प्रकार के पापकर्मों का विनाश कर डालता है। इसीलिए महावीर स्वामी ने कहा है 'हे आर्य, संसार के जन्म और वार्धक्य को देख। विचार कर जान कि सब प्राणियों को सुख अधिक प्रिय है। जो जानकार (तत्त्वज्ञ) लोग हैं वे सत्य में आस्था रखते हुए पापकर्मों को नहीं करते। जो सत्यवादी पुरुष हैं वे अपना कल्याण स्वयं देख लेते है।'

साँप की केंचुली से कर्मों की तुलना करते हुए एक गाथा में कहा गया है कि 'हे भव्य जीवों, केंचुली त्याग देने योग्य होती है। इसलिए सर्प उसका त्याग कर देते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी दुर्दशा होती है।'

इसी तरह कर्म भी त्याग देने योग्य हैं। जितने भी क्रोध, मद, माया और लोभ आदि कषाय (नशे) हैं, मुनि लोग उनको कर्म का कारण समझ कर त्याग देते हैं। कर्म और कषायों का अन्वय व्यतिरेक संबंध है। अर्थात् कषायों के होने पर कर्म होते हैं और कषायों के नष्ट होने पर कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। 'कारण नहीं होने से कार्य नहीं होता' ऐसा विचार कर मुनि लोग गोत्र, जाति, कुल और रूप आदि के मद से उन्मत्त नहीं होते।

बारह प्रकार की भावना

जैन धर्म के आदेशानुसार प्रत्येक जैनी को इस बारह प्रकार की 'भावना' या 'अनुपेक्षा' का पालन करना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१—अनित्य भावना : इस संसार में कोई अमर नहीं है। सब कुछ क्षणभंगुर है।

२—अशरण भावना : इस संसार में जीव का कोई सहारा नहीं। जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा।

३—संसृति भावना : पूर्व जन्म में हमने अनेक तरह के दुःख भोगे हैं। अब हमें उन दुःखों से छुटकारा पाने के लिए यत्न करना चाहिए।

४—एकत्त्व भावना : मैं इस संसार में अकेला ही हूँ। पुत्र-पिता आदि के ये सारे संबंध व्यर्थ हैं।

५—अन्यत्त्व भावना : संसार की सभी वस्तुएँ मुझसे भिन्न हैं। उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है।

६—अशुचि भावना : यह शरीर बड़ा अपवित्र है। इसका अभिमान करना व्यर्थ है।

७—आस्रव भावना : जिनके कारण नये सत्कर्म उत्पन्न हो, ऐसी बातों को सोचते रहना चाहिए।

८—संवर भावना : नये कर्मों से आत्मा न बँध जाय, ऐसे उपायों को सोचते रहना चाहिए।

९—निर्जरा भावना : कर्मों के बंधन को क्षीण करने के उपायों को सोचते रहना चाहिए।

१०—लोक भावना : यह संसार किन-किन द्रव्यों से बना है तथा इसके तत्त्व क्या-क्या हैं, इसका चिन्तन करते रहना चाहिए।

११—बोधि-दुर्लभ-भावना : सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र, ये तीन रत्न दुर्लभ हैं। इनके अतिरिक्त संसार की सभी वस्तुएँ सुलभ हो सकती हैं, ऐसा सोचते रहना चाहिए।

१२—धर्म भावना : ये तीन रत्न ही संसार के सभी प्रकार के सुखों को देने वाले धर्म हैं, ऐसा विचार करते रहना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सदाचार

शरीर और आत्मा की शुद्धि के लिए राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि दुर्व्यसनों का परित्याग करने के लिए जो आचरण किया जाता है उसी को 'सदाचार', 'संयम' या 'सम्यक् चारित्र' कहा जाता है। पापकर्मों का परित्याग और पुण्यकर्मों का आचरण ही सदाचार है।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, उद्दण्डता (क्रोध) का व्यवहार करना और मांगना, ये सभी पापकर्म हैं। इनसे दूर रहना चाहिए। इनके विपरीत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अक्रोध और अपरिग्रह, ये पुण्यकर्म हैं। ये सदाचार हैं। इनसे चरित्र का निर्माण होता है। इनको अपनाना चाहिए।

अहिंसा : राग, द्वेष आदि विकारों या व्यसनों की उत्पत्ति को हिंसा और उनके दमन को अहिंसा कहा गया है। स्थूल, सूक्ष्म, चर, अचर, किसी भी जीव को मन, वाणी तथा शरीर से हिंसा न करना, न कराना तथा करते हुए का समर्थन न करना ही अहिंसा का परिपालन करना है।

सत्य : असत्य (झूठ) न बोलना ही 'सत्य' है। मन, वाणी और शरीर से क्रोध, लोभ, मोह या भय से अथवा मजाक में कभी झूठ का आचरण न करना, न कराना और करते हुए का समर्थन न करना सत्य का आचरण है।

अस्तेयः दूसरे की रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई या बिना दी हुई वस्तु को ले लेना, दूसरे को लेने की राय देना या उसका समर्थन करना, सब चोरी है। इससे विमुख रहना 'अस्तेय' है।

अक्रोध : क्रोध न करना ही 'अक्रोध' है। मन, वाणी तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शरीर से किसी जीव पर क्रोध न करना, न कराना और न करते हुए का अनुमोदन करना 'अक्रोध' है।

अपरिग्रह : किसी से कोई वस्तु ग्रहण न करना, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, न कराना और न करते हुए का अनुमोदन करना, 'अपरिग्रह' है।

सदाचार का आधार दया

सदाचार का आधार दया है। दया के चार रूप हैं: १. बदले की भावना न करके भलाई करना; २. दूसरे की उन्नति पर खुश होना; ३. दुखियों के लिए सहानुभूति और उनके दुःख दूर करने के लिए यत्न करना; और ४. पापकर्म करने वालों के प्रति करुणा। इस चतुर्विध दया का आचरण करना ही सदाचार है।

चार कषाय

ये कषाय मनुष्य को बुराई की ओर ले जाने वाले, सुख में दुःख बन कर आने वाले और तपस्या में रोग का रूप धारण करने वाले सबसे बड़े पाप हैं। इनको दूर करना परम आवश्यक है। कहा भी है :

'जिस प्रकार नील चढ़े कपड़े पर कसूंबे का रंग नहीं चढ़ता उसी प्रकार जिसकी आत्मा कषायों से कलुषित हो चुकी है उसके अन्तःकरण में धर्म की बात नहीं उतरती।'

जैसे दावानल से वन के तमाम वृक्ष राख हो जाते हैं उसी प्रकार कषायों के वश में हुआ जीव अपने जन्मान्तर के कार्यों को नष्ट कर देता है। इसलिए धर्म की रक्षा के लिए कषायों का उन्मूलन आवश्यक बताया गया है।

ये कषाय संख्या में चार हैं : १. क्रोध, २. मान, ३. माया और ४. लोभ। इनका स्वरूप, इनसे होने वाला अनिष्ट और इन पर विजय पाने का तरीका इस प्रकार है।

१ क्रोध

क्रोध मुख्य कषाय है और जीवों के लिए महान् घातक। उससे जीवों का कितना बड़ा अनिष्ट होता है, इसका हवाला एक गाथा में इस प्रकार दिया गया है :

एक दिन का ज्वर छह महीने के बल को हर लेता है, किन्तु एक क्षण का भी क्रोध करोड़ों वर्षों के कमाये तप को नष्ट कर देता है। क्रोध में मनुष्य जड़ हो जाता है। वह अपने विवेक को खो बैठता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उसको क्या करना चाहिए, क्या न करना चाहिए, इसकी सुध नहीं रहती।

जीवों से लिए वह दुःखदायी, दुर्गति और अवनति का कारण है। वह उस प्रचण्ड आग की लपटों की तरह है, जो पहले क्रोध करने वाले को और फिर दूसरों को जला देता है। वह शांति में अशांति, पुण्य में पाप और चरित्र में कलंक के समान है। क्रोध में आकर मनुष्य अपने माता, पिता, गुरु, मित्र, भाई, स्त्री और यहां तक कि अपने आप को भी मार डालता है।

क्रोधान्धा पश्य, निघ्नन्ति, पितरं मातरं गुरुम्।
सुहृदं सोदरं दारानात्मानमपि निर्घृणा॥

क्रोध में आकर कृष्ण-द्वैपायन ने सारी द्वारिका नगरी को भस्म कर दिया था। वाल्मीकि जैसे शान्त प्रकृति के महर्षि भी उसकी चपेट में आ गये थे। महर्षि दुर्वासा तो क्रोध के जीवित स्वरूप थे।

सारे अनर्थों के कारण इस क्रोध को जीतने के लिए क्षमाशील होने की आवश्यकता है। स्वयं पर क्रोध करने वाले मनुष्य के प्रति यह सोचना चाहिए कि यदि उसकी क्रोधोक्ति ठीक है तो वह उचित ही है, और यदि उसका कहना मिथ्या है तो उसको उन्मत्त समझ कर क्षमा कर देना चाहिए। क्रोध के लिए, क्षमा बड़ा अस्त्र है। कहा भी है:

क्षमाशस्त्रं करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेव विनश्यति॥

अर्थात् क्षमा का हथियार जिसके हाथ में है, दुष्ट मनुष्य उसका कुछ नहीं कर सकता है। वह उसी प्रकार अपने आप शांत हो जाता है जैसे घास-फूस से रहित पृथ्वी पर गिरी हुई आग स्वयमेव शांत हो जाती है। कहा भी गया है:

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'सारी इन्द्रियों को स्थिर कर देने वाले, बढ़ते हुए क्रोध रूपी महासर्प को, क्षमा रूपी मंत्र से जीत लेना चाहिए।'

वस्तुतः हमारा क्रोध होना चाहिए क्रोध पर ही; क्योंकि वही हमारे सारे पुरुषार्थों का अपहरण करने वाला है। यदि इस बात पर विचार न करके, थोड़ा सा अपराध करने वाले व्यक्ति पर हम क्रोध करते हैं तो हमारी यह नासमझी ही कही जायगी।

२ मान

भगवान् ने अपने उपदेश में कहा है 'हे जीवों, मान न करो। मान करने से विनय नष्ट होता है। विनय के अभाव में विद्या को हासिल नहीं किया जा सकता। विद्या के बिना मनुष्य में विवेक नहीं आ पाता। और अविवेकी पुरुष को उस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, जो मोक्ष को देने वाला है।'

मान करने से विनय, शास्त्र, सदाचार और धर्म, अर्थ काम, इस त्रिवर्ग की हानि है। उससे मनुष्य की विवेक दृष्टि नष्ट होकर वह अंधा हो जाता है।

यह मान या मद संसार में कई तरह से किया जाता है। उसके मुख्य आठ तरीके हैं: १. जातिमान, .२ लाभमान, ३. कुलमान, ४. ऐश्वर्यमान, ५. बलमान, ६. रूपमान, ७. तपमान और ८. ज्ञानमान। इन आठ प्रकार के मानों या मदों से एक को भी अपनाने पर मनुष्य का पतन हो जाता है। यदि इनमें से मनुष्य अनेकों को गले लगाये हैं तब तो ईश्वर ही उसका रक्षक है।

हमारा जातिमान वृथा है। जो ब्राह्मण आदि जातियाँ हमें मिली हैं वे कर्मों के अनुसार हैं और अनित्य हैं। ऐसी अनित्य वस्तुओं पर गर्व करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। किसी वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति शुभाशुभ कर्मों पर निर्भर है। शुभ कर्मों के उदय से और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशुभ कर्मों के क्षय से लाभ होता है। ऐसे लाभ की अवस्था में मद करने की अपेक्षा विनम्र होकर ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए।

यदि मनुष्य कुल का अभिमान करता है तो वह दुराचारी है। उत्तम कुल में उत्पन्न व्यक्ति यदि निम्न कुल के व्यक्ति के प्रति अभिमान करता है तो उससे कुलभ्रष्ट दूसरा हो ही नहीं सकता है।

ऐश्वर्य का मद करना भी बुद्धिमानी नहीं है। ऐश्वर्य या संपत्ति तो एक दुराचारिणी स्त्री है, जो गुणवानों को त्याग कर दुराचारियों को अपनाये रहती है।

बल का अभिमान भी वृथा है, क्योंकि रोग और बुढ़ापा मनुष्य जीवन के साथ इस तरह गुथे हैं कि एक दिन में ही वे मनुष्य के सारे बल को चाट खा जाते हैं।

रूप का अभिमान करना मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है, क्योंकि वह तो क्षणिक है। शरीर की अवस्था के साथ ही वह भी क्षीण हो जाता है।

तप का अभिमान करना, तप से अर्जित पुण्य का नाश करना है। इसी प्रकार ज्ञानमद (शास्त्रज्ञ होने का मद) करने वाले मनुष्य स्वयं ही अपने शरीर को खा जाता है और अपनी ही आत्मा को हानि पहुँचाता है।

इसलिए मान या अभिमान का त्याग कर देना चाहिए। मान विजयी व्यक्तियों को विवेक, विनय, प्रतिष्ठा आदि की उपलब्धि होती है, जिससे वे वास्तविक ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र को देख सकते हैं।

३ माया

कपट, छल, प्रपंच, धोखा, विश्वासघात—इसी को लोकभाषा में 'माया' कहा गया है।

जो मनुष्य माया से अलग है वह संसार से भी अलग है; और जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया से बंधा है वह संसार से बंधा हैं। 'माया' असत्य की जननी है, वह ब्रह्मचर्यरूपी वृक्ष को काटने वाली है, अविद्या की जन्मभूमि है और दुर्गति का कारण है।

> असूनृतस्य जननी परशुः शीलशाखिन।
> जन्मभूमिरविद्यानां माया दुर्गतिकारणम् ॥

ऐसे मायवी लोग पापी होते हैं और छल-कपट से वे दूसरों का जो अहित करते हैं, वस्तुतः उससे उनका ही अहित होता है। माया के बंधन में जकड़ा हुआ मनुष्य स्त्री, भाई, पुत्र, स्वामी और सेवक आदि सभी को ठगता है। मायावी मनुष्यों की प्रकृति 'बगुला भगत' जैसी होती है।

माया से मुक्त होने के लिए हमें चाहिए कि दंभ (कपट) का नाश कर दें; क्योंकि कहा गया है 'यह दंभ, मुक्तिवेल के लिए अग्नि के समान और यशरूपी चन्द्रमा के लिए राहु के समान है।' वह अध्यात्म का अवरोधक और दुर्भाग्य का कारण है। मायावी पुरुषों के विद्या, विनय, विवेक आदि सब निष्फल हो जाते हैं। इसलिए 'हे संतो, मायाजाल को काट डालो। उसकी जरा भी गांठ न रखो। चित्त को शांत रखो। इन्द्रियों को धर्म में लगाओ।'

४ लोभ

लोभ अंतिम कषाय है। इच्छा, आशा, तृष्णा आदि इसके अनेक रूप हैं। धन की आशा, विषय की इच्छा और कीर्ति की तृष्णा, ये सभी तो लोभ है। 'दश वैकालिक सूत्र' में लोभ के द्वारा होने वाले अनिष्टों के संबंध में लिखा है :

'क्रोध, प्रेम को नष्ट करता है; मान, विनय को नष्ट करता है; माया, मित्रता को नष्ट करती है; और लोभ, सब गुणों का नाश करता है।' इसलिए सभी काषायों में लोभ सबसे बड़ा दुर्गुण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दुर्गुण का नाश करने पर सहज ही सारे सद्गुण प्रकाशमान हो उठते हैं।

लोभ की कोई सीमा नहीं है। वह मनुष्य को निरन्तर भटकाता रहता है। वह आकाश की भांति अनंत और सागर की भाँति अथाह है। यही लोभ सारे अपराधों का मूल है।

मनुष्य के अनेक सद्गुणों को वह एक ही क्षण में नष्ट कर देता है। वह धर्म का घातक तथा पाप का पोषक है। वह अज्ञान, मिथ्या, दंभ, ईर्ष्या, रति, शोक और संताप को देने वाला है।

क्रोध, मान और माया, इन तीन कषायों को जीत लेने वाले मुनि लोग भी लोभ के कारण पतित हो जाते हैं। लोभ में पड़े हुए अनेक धनिकों की काथाएँ लोक में प्रचलित हैं।

अतः लोभ को सर्वथा त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन की उन्नति के लिए चारों कषायों (नशों) का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय वासनाओं से दूर रहो

एक गाथा में कहा गया है 'हे भव्य जीवों, यदि तुम इस संसार की पीड़ाओं से घबरा गये हो, यदि जन्म, वार्धक्य तथा मृत्यु के दुःख से तुम्हारा मन उद्विग्न हो गया है, और यदि तुम्हारी इच्छा इस संसाररूपी वन को छोड़कर मुक्ति मंदिर में जाने की है, तो तुम्हें चाहिए कि विषयरूपी विषवृक्ष के नीचे एक क्षण भी न रुको।'

इन्द्रियों का विषयों में रमण करना ही इस संसार का मूल कारण है। विषयों की इच्छा करने वाला व्यक्ति प्रमादी हो जाता है और माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, संपत्ति आदि के लोभ-मोह में पड़ा हुआ वह चिन्ता के झूले में झूलता रहता है। ऐसा व्यक्ति समय-अ-समय का ध्यान रखे बिना लूट-खसोट करता रहता है।

यह शरीर नाशवान् है। फिर भी मनुष्य प्रमादवश जो किसी ने नहीं किया, ऐसा करने का, दंभ भरता रहता है। किन्तु जो बुद्धिमान् होते हैं वे विषयों से विमुख होकर धर्म में मन लगाते हैं। जो व्यक्ति बिना किसी प्रकार का लोभ किये साधु का जीवन धारण कर संयम का पालन करता है, वही वास्तव में सब कुछ देखता और जानता है।

मनुष्य हिंसा इसलिए करता है कि वह अपने को सब में सब प्रकार से बड़ा बनाये रखे; या वह भय से, या पाप से अथवा किसी आशा से हिंसा करता है।

ये सभी व्यसन हैं। बुद्धिमान् मनुष्य को इनसे दूर रहना चाहिए। ये रंग-बिरंगे कपड़े; ये मणि, कुण्डल और सुवर्ण के आभूषण; ये स्त्री, पुत्र आदि सभी तो विषय हैं; मनुष्य को उलझा देने वाले हैं। इनमें आसक्त रहने वाले व्यक्ति को तप, दम, नियम आदि कुछ नहीं दिखायी देते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस पुरुष को शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श, इन विषयों की जानकारी हो गयी है वही आत्मज्ञानी, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ है।

जो पुरुष शब्दादि विषयों की इच्छा से उत्पन्न होने वाली हिंसा को जानता है वह संयम को भी जानता है; और जो संयम को जानता है, वह शब्दादि विषयों से उत्पन्न होने वाली हिंसा को भी जानता है।

अहिंसा क्या है ?

जैन धर्म का अहिंसाव्रत जीवन का सबसे बड़ा आदर्श है। प्रत्येक संसारी व्यक्ति और यतिधर्म में दीक्षित विरक्त के लिए अहिंसा का परिपालन करना पहला आवश्यक कर्तव्य है।

यद्यपि अन्य धर्मों में भी अहिंसा के परिपालन पर बड़ा बल दिया गया है; किन्तु जैन धर्म में अहिंसा का विचार कुछ नये ढंग का है। बल्कि महावीर स्वामी का तो यहाँ तक कहना है कि अन्य धर्मों तथा शास्त्रों में हिंसा के पक्ष पर जो विचार किया गया है वह भ्रामक है।

जैन धर्म में अपकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय आदि छह प्रकार के जीव बताये गये हैं। चींटी से लेकर हाथी तक जितने भी चेतन प्राणी हैं और राई से लेकर पर्वत तक जितने भी जड़ या अचेतन प्राणी हैं, सब को जैन धर्म में जीव माना गया है। इन अचेतन प्राणियों का स्वरूप वैसा ही है, जैसा मनुष्य आदि चेतन प्राणियों का होता है।

उदाहरण के तौर पर जैसे मनुष्य पैदा होता है वैसे ही वनस्पति (पेड़, पौधे) की भी पैदाइश होती है। जैसे मनुष्य का शरीर बढ़ता है वैसे ही वनस्पतियाँ भी बढ़ती हैं। जैसे मनुष्य का शरीर काट देने से वह सूख जाता है वैसे ही वनस्पतियों को काट देने से वे कुम्हला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती हैं। जैसे मनुष्य खाता है वैसे ही वनस्पतियाँ भी खाती हैं। जैसे मनुष्य अनित्य है वैसे ही वनस्पतियाँ भी अनित्य हैं।

इसी प्रकार पांच प्रकार के अन्य जीवों का भी संबंध है। जब कि संसार की प्रत्येक वस्तु में प्राण है, तो निश्चत ही जाने या अनजाने में निरन्तर हमारे द्वारा हिंसा होती रहती है। उन्हीं से बचे रहने के लिए महावीर स्वामी आदि तीर्थकरों ने कुछ उपाय बताये हैं।

इन अनेक प्रकार की हिंसाओं से बचने के लिए पहली आवश्यकत है इन्द्रियों को वश में करने की। जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, ऐसा विषयों में फंसा हुआ पुरुष हर जगह, हर किसी को कष्ट पहुँचाता है। वे विषय केवल भोग-वासना के ही नहीं है; बल्कि पूजा, आर्चना से लेकर मांस खाने तक अनन्त हैं।

ऊपर संकेत किया गया है कि ये हिंसायें हम से अनजाने में ही हो जाती हैं। उसका कारण यह है कि जीव इतने सूक्ष्म भी हैं, जो पलक मारने से ही मर जाते हैं। इन जीवों को हम अर्थ के लिए भी मारते हैं और विना अर्थ के लिए भी। इन सूक्ष्म जीवों की हम अनेक उद्देश्यों से हिंसा करते हैं, जैसे :

१—इसने मुझे पहले कभी मारा था, अतः इसको भी मारना चाहिए, इस भावना से।

२—यह मुझे मारता है, अतः इसको भी मै मारता हूँ, इस भावना से।

३—यह मुझे आगे चल कर मारेगा, अतः इसको भी अभी मारना चाहिए, इस भावना से।

ये अनेक तरह की भावनायें ही हमें अनेक प्रकार की हिंसाओं को करने के लिए विवश करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महावीर स्वामी ने जीवों की हिंसा को चोरी (अदत्तादान) कहा है (अदुवा अदिन्नादाणम्)। जो व्यक्ति अपने सुख की तरह दूसरों के सुख का ध्यान रखता है वह हिंसा के कुकर्म से बच जाता है।

इन हिंसाओं से बचने के लिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह उक्त सभी प्रकार की हिंसाओं का परित्याग कर दे। उसके प्रचार करने वालों की हामी भी भरे।

इस लोक में जो व्यक्ति प्रयोजन के लिए या बिना प्रयोजन के लिए षट्काय (छह तरह के) जीवों की हिंसा करता है वह इन्हीं जीवयोनियों में बार-बार जन्म लेकर फिर-फिर मारा जाता है।

अहिंसा ही एकमात्र रास्ता है, जिस पर चलकर सभी रास्ताओं का अपने-आप पता लग जाता है। मोक्ष की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि वह किसी जीव की हिंसा न करे, न कराये और न हिंसा करने वाले का साथ दे।

यह संसार (नर-भव) एक अवसर है। ऐसे अवसर को पा जाने के बाद प्रमाद नहीं करना चाहिए। दूसरे प्राणियों को अपने ही समान देखना चाहिए। किसी भी प्राणी की, सब तरह की, हिंसा से दूर रहना चाहिए।

स्याद्वाद

स्याद्वाद का सिद्धान्त जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का स्तंभ है। 'स्याद्' कहते हैं 'किसी अपेक्षा से' और 'वाद' कहते हैं 'मन्तव्य' को। अर्थात् वस्तु के तत्त्व-निर्णय में जो 'वाद' किसी 'अपेक्षा' की प्रधानता पर निर्भर है उसको 'स्याद्वाद' कहते हैं।

स्याद्वाद के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म विद्यमान हैं। जब हम किसी वस्तु के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं तो उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक धर्म को मुख्य और अन्य धर्मों को गौण बताते हैं। प्रत्येक वस्तु का एक रूप तो दिखायी देता है; किन्तु दूसरा रूप छिपा रहता है।

इसलिए किसी वस्तु का पूरा ज्ञान हमें तभी हो सकता है, जब हम उसके छिपे और प्रकट, दोनों रूपों को सामने रखकर उस पर विचार करें। किसी वस्तु के प्रकट रूप को आधार मान कर उस वस्तु का हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है वह आपेक्षित है। अर्थात् एक वस्तु एक अपेक्षा (तरह) से जैसी है, अन्य अपेक्षाओं (तरहों) से वह दूसरी प्रकार की भी हो सकती है। उदाहरण के लिए नींबू और नारंगी को एक साथ रखकर यदि कहा जायगा कि उन दोनों में कौन बड़ी है, तो हम नारंगी को ही बड़ा बतायेंगे। किन्तु नारंगी की तुलना जब हम नारियल से करेंगे तो हमें नारंगी को छोटा बताना पड़ेगा।

इसलिए जैन विचारकों का कहना है कि अपने नित्यप्रति के व्यवहारिक जीवन में हम किसी वस्तु को छोटा और किसी वस्तु को बड़ा बताते हैं, वह आपेक्षिक है।

जैन धर्म का स्याद्वाद हमें बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को सही समझे; किन्तु दूसरे का विरोधी लगने वाले दृष्टिकोण को गलत न कहे। दूसरे के दृष्टिकोण को गलत कहने का मतलब होगा अपने की दृष्टिकोण को गलत साबित करना।

एक मोटे उदाहरण से इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से यों समझा जा सकता है। लोक में देखा जाता है कि एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, चाचा, भतीजा, मामा, भानजा, आदि सब कुछ हैं। ये अनेक धर्म लोकदृष्टि से एक ही व्यक्ति में है। किसी का वह पिता है, किसी का पुत्र, किसी का चाचा और किसी का भतीजा, मामा, भानजा आदि। यह सापेक्ष्य का सिद्धान्त हमें बताता है कि जो व्यक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने पुत्र का पिता है वह अपने पुत्र का पुत्र नहीं हो सकता; किन्तु एक अपेक्षा से वह अपने पिता का पुत्र भी है।

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जैसे पिता, पुत्र, चाचा, भतीजा आदि अनेक धर्म अपेक्षा से एक ही व्यक्ति में रहते हैं उसी प्रकार एक ही पदार्थ या वस्तु में नित्य और अनित्य, दोनों प्रकार के धर्म भिन्न भिन्न अपेक्षा से विद्यमान रहते हैं।

इस दृष्टि से जैन लोग यह मानते हैं कि एक छोटे दीपक से लेकर अनन्त आकाश तक संसार की सभी वस्तुएँ नित्य भी हैं और अनित्य भी।

अनेकान्तवाद या विभज्यवाद

जैन दर्शन में 'अनेकान्तवाद' का सिद्धान्त भगवान् महावीर की नयी देन है।

बुद्ध और महावीर के समय के विचारकों के सामने कुछ नये प्रश्न एवं नयी समस्यायें थीं, जिनको उन्होंने, उस युग के उक्त दोनों महात्माओं के समक्ष प्रस्तुत किया।

बुद्ध के सामने तत्कालीन विचारकों ने तीन प्रश्न रखे : (१) संसार नित्य है या अनित्य; वह सान्त है या अनन्त ? (२) आत्मा तथा शरीर में आपसी सम्बन्ध क्या है ? और (३) मृत्यु के बाद जीव का क्या होता है ? बुद्ध ने इन तीन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने प्रश्नकर्ताओं से कहा 'जगत् नित्य हो या अनित्य, जन्म और मरण तो है ही। यही जन्म-मरण मेरी दृष्टि का विषय है। यही मेरा 'अव्याकृत' है और इसी से तुम्हारा कल्याण है। इस प्रकार बुद्ध इन रहस्यमय बातों को टाल गये।

महावीर स्वामी के सामने भी वे ही प्रश्न थे। उनको वे तथागत की भांति टाल नहीं सकते थे। इन प्रश्नों का, उस समय के विचारक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलग-अलग उत्तर दे चुके थे। उन सब उत्तरों का समन्वय करके महावीर स्वामी ने कहा :

१—इस जगत् का अन्त भी है और नहीं भी है; अर्थात् वह शान्त भी है और अनन्त भी है। इस अपेक्षा (दृष्टि) से लोक शान्त है कि संख्या में वह एक है। किन्तु पर्यायों (भावों) की अपेक्षा (दृष्टि) से लोग अनन्त हैं, क्योंकि लोक द्रव्य के पर्याय अनन्त हैं। लोक शान्त होने से अनित्य है; क्योंकि उसकी भी एक सीमा है। वह आकाश में नहीं है। इसी प्रकार लोक अनन्त होने से नित्य है; क्योंकि तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में उसका अस्तित्व है।

२—आत्मा, शरीर से भिन्न भी है और अभिन्न भी है। जिस अवस्था में शरीर, आत्मा से भिन्न है उस अवस्था में वह अचेतन है। किन्तु जिस अवस्था में शरीर, आत्मा से अभिन्न (अलग नहीं) है उस अवस्था में वह सचेतन है।

३—जीव अमर भी है और मरता भी है। शुद्ध अवस्था में जीव अमर है और अशुद्धावस्था में मरणशील। जीव की शुद्धावस्था का नाम 'अर्हत' है। इस अवस्था में जीव का अस्तित्व सदा बना रहता है। किन्तु मनुष्य का रूप धारण करने वाला जो कर्मकृत (कर्मों का करने वाला) जीव है वह मरणशील एवं अनित्य है।

आत्मा

जैन मत से जो आत्मा है, वह विज्ञाता है; जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। जानने के सामर्थ्य के द्वारा ही आत्मा की प्रतीति सिद्ध होती है। उसके स्वरूप को बताया नहीं जा सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थंकर महावीर स्वामी ने कहा है कि 'आत्मा मुक्त है। वह न बड़ा है, न छोटा है, न गोल है, न तिकोना है, न लाल है, न पीला है, न श्वेत है, न सुगंधिवाला है, न दुर्गंधिवाला है, न कड़वा है, न खट्टा है, न कषैला है, न मीठा है, न कठोर है, न कोमल है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गर्म है, न चिकना है, न सूखा है।'

'उसका न तो शरीर है न पुनर्जन्म होता है। वह न तो स्त्री है, न पुरुष और न नपुसंक ही। उसके लिए कोई शब्द नहीं, उसका कोई रूप नहीं, और उसके लिए कोई उपमा नहीं।'

'वह ज्ञाता है, परिज्ञाता है।'

परमात्मा या ईश्वर

जैनियों का परमात्मा (परम आत्मा) या जिनेश्वर ही ईश्वर है। तीर्थंकर भी उनके लिए परमात्मा के ही रूप हैं। इसी दृष्टि से वे उनकी पूजा करते हैं।

उस परमात्मा में मुख्य चार गुण माने गये हैं: १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त वीर्य और ४ अनन्त सुख।

वह परमात्मा अपने ही अनन्त गुणों में विराजमान है। उसको इस संसार की किसी भी वस्तु से कोई प्रयोजन नहीं है। वह इस जगत् के नियमों तथा कार्यों से ऊपर है। पाप और पुण्य से वह अछूता है। वह न तो कर्मों का फल भोगता है और न लोगों को उनके कर्मों का फल देता है।

वह संसार का भाग्य विधाता भी नहीं है। वह क्रोध, अपमान, लोभ, हानि, भय तथा विस्मय आदि विकारों से रहित है। वह सर्वज्ञ है, अजर, अमर है। विश्व के उत्पत्ति, विनाश, आदि कार्यों से उसका कोई वास्ता नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसी को जैन धर्म में परम आत्मा या ईश्वर माना गया है।

पुनर्जन्म और मोक्ष

कर्म की श्रेष्ठता पर जैन धर्म में बारीकी से विचार किया गया है। वहां कहा गया है कि अच्छे कर्म करने चाहिएँ और बुरे कर्मों से अलग रहना चाहिए। अच्छे कर्मों से पुण्य और बुरे कर्मों से पाप होता है। पुण्य के संचय से सुख और पाप के संचय से दुःख होता है जैन धर्म का यह विश्वास है कि अच्छे कर्मों के करने से अच्छे वंश में जन्म मिलता है।

जैनी यह मानते हैं कि जीव, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। अपने द्वारा कमाये गये कर्मों के अनुसार ही उसको दूसरा जन्म मिलता है। जैसा कि वैदिक दर्शनों में भी माना गया है कि पुण्य से स्वर्ग और पाप से नरक मिलता है। जैनी लोग भी यही मानते हैं। उनका कहना है कि जब पुण्य और पाप बराबर होते हैं या पाप से पुण्य अधिक होता है तब जीव को अच्छी गति मिलती है। ब्राह्मण तथा गाय की योनि में जन्म लेना अच्छा माना गया है।

पुण्य कर्मों के निरन्तर करते जाने से 'सम्यक् दृष्टि' प्राप्त होती है। उसके बाद मनुष्य पाप-पुण्य दोनों पर विजय प्राप्त करके जिन (देवता) हो जाता है। जिन होने के बाद शेष जीवन में धर्म का प्रचार करते रहने से वह तीर्थंकर हो जाता है। तीर्थंकर महात्माओं की सभी इच्छायें अपने वश में होती हैं। वे ही मोक्ष के अधिकारी हैं।

मोक्ष का मूल कारण ज्ञान है। 'जो एक को जानता है वह सबको जानता है, और जो सबको जानता है, वह एक को भी जानता है' :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ॥

यही मोक्ष का मूल कारण 'सम्यक् ज्ञान' है। मोक्ष प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य को जन्म-मरण के बंधनों से छुटकारा मिल जाता है। उसको न तो कर्म करने की आवश्यकता होती है और न उनके उपभोग के लिए दूसरा जन्म धारण करने की जरूरत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुनिधर्म या यतिधर्म

मुनि : यति

संसार को तरने वाला ही 'मुनि' या 'यति' कहलाता है। उसी को 'तीर्ण', 'मुक्त' या 'विरक्त' कहा गया है (एस ओहन्तरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए त्तिबेमि)। जो प्रज्ञा (बुद्धि या ज्ञान) की आंखों से लोक के स्वरूप को अच्छी तरह देखता या जानता है वही 'मुनि' या 'यति' है।

मुनि होने के लिए ममता का परित्याग

जो जीव मुनि होना चाहता है उसको चाहिए कि पहले वह अपने कुटुम्ब के लोगों से अपना पीछा छुड़ा ले। पीछा छुड़ाने की रीति इस प्रकार है। वह कहे :

'हे इस जन के भाई-बन्धुओं, मेरा आत्मा, तुम्हारा आत्मा नहीं है। ऐसा तुम निश्चय कर जान लो। मेरे आत्मा में ज्ञान का प्रकाश हुआ है। इसलिए मेरा आत्मा अपने असली भाई-बन्धुओं से मिलने जा रहा है। हे माता-पिता, तुमने मुझे पैदा किया, मेरे आत्मा को पैदा नहीं किया। इसलिए इसकी ममता छोड़ो। हे इस जन की स्त्री, तू इस आत्मा को प्रसन्न नहीं करती, इस जन को प्रसन्न करती है। अतः इस आत्मा से ममताभाव को छोड़ दे। हे इस जन के पुत्र, तू इस जन से पैदा हुआ है, इस जन के आत्मा से तेरा कोई नाता नहीं है। इसीलिए इस आत्मा से ममता छोड़ दे।'

इस प्रकार भाई, माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि से पीछा छुड़ाना चाहिए।

वैराग्य से ही मोह का बंधन काटा जा सकता है

एक गाथा में कहा गया है : 'हे भव्य जीवों, समझो। समझते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्यों नहीं ? परलोक में धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है। गया समय फिर वापिस नहीं आता। बार-बार मनुष्य जीवन मिलना कठिन है। कई बालकपन में, कई वृद्धावस्था में और कई जन्मते ही मर जाते हैं। आयु समाप्त होने पर जीवन किसी तरह नहीं टिकता। जिस प्रकार श्येन पक्षी छोटी-छोटी चिड़ियों को खा जाता है उसी प्रकार काल भी जीवों का संहार कर लेता है।'

'जो जीव माता-पिता आदि के मोह में पड़ा है, उसको अच्छी गति नहीं मिलती। वह दुर्गति को जाता है। लोहे की जंजीरों को शरीर के बल से तोड़ा जा सकता है; किन्तु माता, पिता, पुत्र, स्त्री और बंधु रूपी पदार्थों से बनी हुई मोह-जंजीर शरीर के बल से भी नहीं टूट पाती। उसको तोड़ने के लिए परम वैराग्य रूपी तेज कुठार की आवश्यकता है।'

'इसलिए, हे भव्य जीवों, संतोष को अपनाओ और मोह, ममता, को छोड़ दो। थोड़े समय के सुखाभास के लिए सागर के समान दुःख को किस लिए अपने सिर लेते हो ?'

'जिस कुटुम्ब के लिए तुम प्रयत्न कर रहे हो, वह तुम्हारे साथ चलने वाला नहीं है। जो कुटुम्बी तुम्हारे साथ चलने वाले हैं उनको अपनाने के लिए यदि थोड़ा सा भी प्रयत्न करोगे तो हमेशा के लिए सुखी बन जाओगे।'

संसार दुःखमय है

(१) हे भव्य जीवों, यह संसार, समुद्र की तरह अपार है, और प्राणियों को चौरासी लाख योनियों में भटकाने वाला है।

(२) इस संसार रूपी नाटकशाला में जीव, कभी तो ब्राह्मण का रूप धारण करता है, कभी चाण्डाल का, कभी सेवक का और कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामी का। कभी तो वह ब्रह्मा का पार्ट अदा करता है और कभी छोटा सा कीड़ा बन जाता है।

(३) यह संसारी जीव किराये की कोठड़ी की तरह किस योनि में नहीं जाता और किस को छोड़ता है? वह सब में जाता है और सब को छोड़ कर लौट भी जाता है।

(४) नाना प्रकार के रूप रचकर यह जीव, कर्म के भोग से समस्त लोकाकाश में फिरता है। बाल भर भी स्थान नहीं बचा, जहां जीव न गया हो। अर्थात् वह इस लोक में आकर अनन्त बार जन्म मरण कर चुका है।

(५) यह संसारी जीव चार प्रकार की योनियों में विभक्त है: १ नरक, २. तिर्यंच (पृथ्वीकाय), ३. मनुष्य और ४. देव। इन चारों गतियों में यह जीव कर्मपीड़ित और दुःखी है।

दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय

इन नाना प्रकार के सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए पुरुष को 'शीतोष्ण-त्यागी' और 'निर्ग्रंथ-अरति-रति' होने की आवश्यकता है। सर्दी-गर्मी में एक समान बने रहने वाले पुरुष को 'शीतोष्ण त्यागी' और धर्म में अरुचि और अधर्म में रुचि पैदा करने वाले प्रसंगों को जो सहन करता है उसको 'निर्ग्रंथ-अरति-रति' कहते हैं। कितने ही कठोर, भयप्रद एवं कष्टकर परिस्थितियां क्यों न आ जाँय। इनसे जो विचलित नहीं होता वही दुःखों को जीतने वाला है। 'गीता' में ऐसे पुरुष को 'स्थितधी' (स्थिर बुद्धि) कहा गया है। इसी को यतिव्रत कहा गया है।

यतिव्रत को धारण करने से ही मनुष्य समस्त सांसारिक क्लेशों से छुटकारा पा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यतिधर्म के आवश्यक कर्तव्य तथा नियम

तीर्थंकर महावीर स्वामी ने कहा है: 'जो भिक्षु १. भिक्षा के समय को जानने वाला (कालज्ञ), २. भिक्षा देने वाले की शक्ति को जानने वाला (बलज्ञ), ३. भिक्षा की मात्रा को जानने वाला (मात्रज्ञ), ४. भिक्षा के अवसर को जानने वाला (क्षणज्ञ), ५. भिक्षा के नियमों को जानने वाला (विनयज्ञ), ६. अपने सिद्धान्त और दूसरे के सिद्धान्त को जानने वाला (स्व समयज्ञ, पर समयज्ञ), ७. दूसरे के अभिप्राय को जानने वाला (भावज्ञ), ८. भोगोपभोग की सामग्री (परिग्रह) में ममता न रखने वाला, ९. समय से अनुष्ठान करने वाला और १० प्रतिज्ञा को जानने वाला होता है वह राग, द्वेष का छेदन कर मोक्ष के मार्ग में आगे बढ़ता है।'

भिक्षुक को चाहिए कि वह वस्त्र, पात्र (प्रतिग्रह), कम्बल, रजोहरण (पादपुंच्छनक), स्थान (अवग्रह), शय्या (कटासन) और आसन आदि सामग्री को गृहस्थों से मांग ले।

भोजन मिल जाने पर उसमें कितना लेना चाहिए, इसका ध्यान रखे।

भिक्षुक को चाहिए कि भिक्षा मिल जाने पर वह गर्व न करे। न मिलने पर शोक न करे। अधिक मिलने पर उसका संग्रह न करे। भोगों से अपने को दूर रखे।

इस मोक्ष मार्ग को आर्य तीर्थंकरों ने बताया है। ऐसा आचरण करने से बुद्धिमान् पुरुष कभी भी कर्मों के फंदे में नहीं जकड़े जाते।

संयम या आत्मनिग्रह का पालन

इन्द्रियों का निग्रह ही आत्मनिग्रह है। यह संयम से ही संभव है। साधक पुरुष अपने ही भीतर चुपचाप अपने मित्र को खोज लेता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी को महावीर स्वामी ने 'अपनी आत्मा का निग्रह' कहा है।

यदि संयमी पुरुष किसी कारण कामवासना (ग्रामधर्म) से पीड़ित हो जाय तो वह ऐसा आहार करे, जिसमें कोई तत्त्व न हो। वह आहार की मात्रा कम कर दे। निरंतर ध्यान में लगा रहे। एक गाँव से दूसरे गाँव चला जाय। आहार को बिलकुल छोड़ दे।

वह स्त्रियों से बातें न करे। स्त्रियों की ओर न ताके। उनके साथ एकान्तवास न करे। ऐसी वेश भूषा न बनाये, जिस पर स्त्रियां रीझती हैं। वह ब्रह्मचर्य का पालन करे।

'हे दुःखी एवं प्रमादी मनुष्यों, मैं तुम्हें सच्ची बात बताता हूँ! मृत्यु के मुंह में पड़े प्राणी को मृत्यु न आये, ऐसा हो नहीं सकता। जो वासनाओं के वश में हैं, असंयमी है, समय की लपेटों में है और रात-दिन संग्रह करने में लगा है, निश्चित ही वह अनेक प्रकार के जीवों में जन्म लेकर दुःखों की भट्टी में तपता रहता है।'

शरीर को क्षीण करना

मुनि को चाहिए कि वह शरीर को धुने (कृश करे)। वह रूखे आहारों का भक्षण करे। जो बुद्धिमान् मनुष्य शरीर से आत्मा को अलग करके देखता है वह बिना मोह किये शरीर को तप से क्षीण करता है।

तप से शरीर और कर्म क्षीण हो जाते हैं

त्यागी यतियों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए तप एक आवश्यक विधान है। तप से होने वाले लाभ के संबंध में एक गाथा में कहा है कि :

'जिस प्रकार भीत (दीवाल) पर लगाये गये चूने या मिट्टी-गोबर के गिर जाने से भीत पतली या कमजोर हो जाती है उसी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनशन (उपवास) आदि छह प्रकार के वाह्यतप का अनुष्ठान करने पर शरीर के कृश होने के साथ ही कर्म भी कृश हो जाते हैं। उसके वाद सर्वज्ञ, वीतराग एवं अहिंसाप्रधान सर्वोत्तम धर्म की प्राप्ति होती है।'

तप से उपसर्गों पर विजय

उपसर्ग दो प्रकार के हैं : अनुकूल और प्रतिकूल। ये दोनों आपस में एक-दूसरे के विरोधी हैं। इनका जब परस्पर संघर्ष होता है तब अनुकूल उपसर्गों की ही विजय होती है। इसको तप या संयम द्वारा ही जाना जा सकता है। कहा गया है कि 'संसार त्यागी, यतिधर्म के पालन में तत्पर, निर्दोष आहार कहने वाले और अनेक प्रकार के तप करने वाले 'अनगार' (गृहत्यागी) को अनुकूल उपसर्ग संयम के ऊँचे स्थान से लेशमात्र भी नहीं गिरा पाते।'

माता, पिता स्त्री, पुत्र आदि के करुणाजनक वचन एवं रुदन, शोक ही 'अनुकूल उपसर्ग' हैं। जो साधु इनकी ओर ध्यान नहीं देता वही अपने चरित्र को भ्रष्ट नहीं होने देता। वही मुक्ति को प्राप्त करता है।

मोक्ष के पांच रत्न

मोक्ष के पांच उपायों को जैन धर्म में 'पांच रत्न' कहा गया है। उनके नाम हैं : १. संसार, २. मोक्ष, ३. मोक्ष के साधक, ४. मोक्ष साधन के मनोरथ और ५. शिष्यों का शास्त्र-पठन-लाभ।

१ संसार : जिन जीवों में मिथ्या बुद्धि है, वे ही जीव संसार हैं। यह मिथ्या बुद्धि ज्ञान से मिटायी जा सकती है। ज्ञान ही मोक्ष का दाता है।

२ मोक्ष : जो प्रत्येक द्रव्य से मुक्त अपने ही स्वरूप में लीन हैं वे ही जीव मुक्त हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३ मोक्ष के साधक : संसार के कर्म रूप किवाड़ों के उद्घाटन में जिन्होंने अपनी शक्ति दिखायी है और जो बड़े प्रभावशाली हैं, ऐसे शुद्ध जीव मोक्ष के साधक हैं।

४ मोक्ष साधन के मनोरथ : महामुनि का जीवन ही सब सकार के कार्यों का स्थान है। इसी दशा में होने पर सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

५ शिष्यों का शास्त्र-पठन-लाभ : जो श्रावक और मुनि इस भगवान् प्रणीत उपदेश को समझता है वह थोड़े ही समय में परमात्मभाव को समझ लेता है।

यति जीवन के अन्य आवश्यक कर्तव्य

१—मूर्च्छा (मित्रता या आसक्ति) का त्याग
२—एकाकी जीवन में रहना
३—स्त्री आदि के संसर्ग का त्याग
४—वचनशुद्धि
५—अज्ञानजन्य प्रवृत्ति का त्याग
६—विषयों का त्याग
७—निष्कपट भाव में रुचि
८—विषयों की इच्छा का त्याग
९—मानसिक बल
१०—कषायों का त्याग
११—मोह का त्याग
१२—स्वार्थपरता का त्याग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म

भगवान् बुद्ध

बौद्ध धर्म के प्राचीन तथा मध्यकालीन अनेक ग्रंथों में तथागत बुद्ध का जीवन चरित्र लिखा हुआ मिलता है। ऐसा कहा गया है कि जन्म लेने पूर्व बुद्ध ने यह विचार कर लिया था कि उन्हें किस देश में किस माता-पिता के घर पैदा होना है। उन्होंने पहले ही यह निश्चित कर लिया था कि मध्य देश के कपिलवस्तु नामक नगर में क्षत्रियराजा शुद्धोधन की सदाचरणशील पत्नी मायादेवी की कोख में जन्म लेना है।

उस समय कपिलवस्तु में लोग आषाढ़ का उत्सव मना रहे थे। उत्सव की अंतिम रात्रि आषाढ़ी पूर्णिमा को मायादेवी ने यह स्वप्न देखा कि कोई दिव्य ज्योति उनकी कुक्षि (कोख) में प्रविष्ट हुई है।

दूसरे दिन रानी ने अपना स्वप्न राजा को सुनाया। राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे स्वप्न का फल पूछा। ब्राह्मणों ने बताया 'महाराज, आप चिन्ता न करें। आपकी देवी की कोख में गर्भ धारण हुआ है। आपको पुत्र होगा। वह यदि घर में रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा और घर छोड़कर साधु बन गया तो महाज्ञानी (बुद्ध) होगा।'

गर्भ के दसवें मास माया देवी ने, महाराज शुद्धोधन से अपने नैहर जाने की इच्छा प्रकट की। राजा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रानी के मार्ग का पूरा प्रबंध भी कर दिया। रानी के नैहर का नाम था देवदह नगर।

कपिलवस्तु और देवदह के बीच लुम्बिनी नामक एक सुन्दर वन था। वहाँ पहुँचने पर रानी ने कुछ समय वन-विहार की इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाते ही देवी को वन में पहुँचाया गया। सैर करते-हुए देवी ने एक शाल (साखू) की शाखा पकड़ने के लिए ज्योंही हाथ उठाया कि उनको प्रसव वेदना आरंभ हो गयी। सभी लोग इधर उधर हट गये। उसी शाल वृक्ष के नीचे खड़े-खड़े रानी ने एक बालक को जन्म दिया। उसी समय चारों महाब्रह्मा आये और वे बालक को सोने की थाल में रख कर माता के पास ले गये। उन्होंने कहा 'देवि, खुशी मनाओ। तुम्हें महा प्रतापी पुत्र पैदा हुआ है।' यह घटना ५०५ वि० पूर्व की है, आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले।

जिस समय लुम्बिनी में बालक का जन्म हुआ उसी समय यशोधरा (राहुलमाता), छन्दक, काल उदायी, उत्तम गज, कंथक अश्वराज, महाबोधि वृक्ष और संपत्ति से भरे चार घड़े भी पैदा हुए। ये सब एक-दूसरे से कुछ ही दूरी पर उत्पन्न हुए।

बालक के जन्म की शुभ सूचना पाकर दोनों नगरों के लोग लुम्बिनी पहुँचे और बालक को लेकर कपिलवस्तु लौट आए। बालक राजमहल में पहुँचा ही था कि काल देवल नामक एक तपस्वी देवलोक से उतर कर महल में आए और उन्होंने राजा से कहा, 'महाराज, मैं आपके पुत्र को देखना चाहता हूँ।'

पुत्र को मँगाया गया। तपस्वी ने बालक की वंदना की। फिर कुछ सोचने के बाद एकाएक उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। लोगों ने आशंका से पूछा 'क्यों भन्ते, हमारे आर्यपुत्र पर कोई संकट आने वाला तो नहीं है?'

'नहीं' तपस्वी ने कहा 'यह तो निश्चय ही बुद्ध होंगे; किंतु मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिए रो रहा हूँ कि इस प्रकार के पुरुष को मैं बुद्ध (ज्ञानी) हुए न देख पाऊँगा।'

जन्म के पाँचवें दिन वेद पारंगत एवं भविष्यफल को बताने वाले देवज्ञ (ज्योतिष), ब्राह्मणों को बुलाकर जब सगुन विचारा गया तो उनमें से सात ने कहा 'ऐसे शुभ लक्षणों वाला गृहस्थ, चक्रवर्ती राजा होता है, और साधु होने पर बुद्ध। उनमें कम उम्र वाले कौण्डिन्य नामक तरुण ब्राह्मण ने कहा 'इसके घर में रहने का कोई कारण नहीं है, अवश्य ही यह महाज्ञानी होना।'

राजा ने रूपवती एवं निर्दोष धाइयों को बालक की परिचर्या के लिए नियुक्त किया। बालक दिन-ब-दिन शोभा तथा श्री के साथ बढ़ता गया।। सिद्धार्थ जब बालक से १६ वर्ष का युवा हुआ तो राजा ने उसके लिए तीन ऋतुओं के अनुकूल तीन महल बनवा दिये। उन महलों में संगीत और शृंगार की समुचित व्यवस्था कर दी गयी। सिद्धार्थ उन भोगों में रम गया। किन्तु बाहरी जाति बिरादरी वालों में यह अफवाह फैल गयी कि युवराज सिद्धार्थ भोगों में लिप्त हो रहे हैं। किसी कला को नहीं सीख रहे हैं। युद्ध करना पड़ेगा तो उस समय क्या होगा?

महाराज ने सिद्धार्थ को बुलाकर यही बात उनसे कह दी। सिद्धार्थ ने राजा से, सारी प्रजा में यह प्रचारित करने के लिए कह दिया कि 'आज से सातवें दिन कुमार अपनी कला (कर्तव) का प्रदर्शन करेगा।' ऐसा ही ढिंढोरा पिटवाया गया। निश्चित दिन पर कुमार सिद्धार्थ ने अपने कौशलों को दिखा कर प्रजा को दंग कर दिया।

एक दिन सिद्धार्थ रथ पर सवार होकर बगीचा देखने के लिए बाहर निकले। इसी समय सिद्धार्थ के बुद्धत्व प्राप्ति का ठीक मौका देखकर देवताओं ने रास्ते में एक ऐसे बूढ़े पुरुष को खड़ा कर दिया, जिसके दाँत टूट गये थे, जिसके बाल पक गये थे, जिसका शरीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झुक गया था और जो हाथ में लकड़ी लिए थर-थर काँप रहा था। सिद्धार्थ ने अपने सारथी से उस वृद्ध पुरुष के संबंध में पूछा। सारथी का उत्तर सुनकर सिद्धार्थ ने उदास होकर रथ को घर की ओर मोड़ देने का आदेश दिया।

दूसरी बार सिद्धार्थ ने एक रोगी को देखा। तीसरे दिन एक मृतक को देखा। चौथे दिन उन्होंने देखा कि एक संन्यासी जा रहे हैं। सिद्धार्थ ने सारथी से संन्यासी का सारा वृत्तांत जाना। ये सभी बातें देवताओं की ओर से हो रही थीं और उनसे सिद्धार्थ का मन वैराग्य की ओर खिंच रहा था।

इसी समय राहुल का जन्म हुआ। सारे घर में, राज्य में खुशियाँ मनायी गयीं; किन्तु सिद्धार्थ उदास बने देखते रहे।

एकाएक एक रात को सिद्धार्थ ने छन्दक को जगाकर कहा 'छन्दक, आज ही मैं महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहता हूँ। मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।' छन्दक ने अश्वराज कन्थक को सजाया। कन्थक ने अपने सौभाग्य मनाये। उधर सिद्धार्थ, राहुल और राहुलमाता को देखने के लिए शयनागार की ओर गये। वहाँ उन्होंने माता-पुत्र को आनन्द से सोते देखकर एक भी शब्द नहीं कहा। महल से उतर कर वे घोड़े की पीठ पर चढ़े। कंथक प्रसन्नता से हिनहिना उठा। छन्दक भी घोड़े की पूँछ पकड़ साथ ही चल दिया। एक ही रात में सिद्धार्थ तीन राज्यों की सीमा पार कर अनोमा (औमी) नदी (जिला गोरखपुर) के तट पर जा पहुँचा। घोड़े ने एक ही टाप में नदी को भी पार कर दिया। नदी पार जाकर सिद्धार्थ ने कहा 'सौम्य छन्दक, तू मेरे आभूषणों तथा कंथक को लेकर लौट जा। मैं संन्यास लूँगा। माता-पिता को मेरा आरोग्य कहना।' छन्दक बेचारा कंथक को साथ ले रोता हुआ नगर की ओर लौट आया।

वहाँ एक सप्ताह रह कर सिद्धार्थ पैदल चलकर राजगृह में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँचे। वहाँ उन्होंने भिक्षा की। लोगों ने भिक्षुक को देखकर करुणा से आँसू बहाये। भिक्षा के उस अन्न को सिद्धार्थ ने जैसे-तैसे खा लिया। वहाँ से वे आलार कालाम और रामपुत्र से पास गये। वहाँ भी उनका मन न लगा। वे उरु वेला के रमणीय प्रदेश में जा पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने छह वर्ष तक सेवा-तपस्या की। उनके मन को संतोष न हुआ।

एक दिन प्रातःकाल ही बुद्ध शौच स्नान से निवृत्त होकर बरगद के पेड़ के नीचे आसन बाँधकर ध्यान में बैठ गये। कुछ समय बाद सुजाता नाम की एक तरुणी ने आकर सिद्धार्थ के आगे खीर की थाली रखी और कहा 'जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ वैसे ही तुम्हारा भी पूर्ण हो।' वह वहाँ से लौट आयी। बोध गया में निराहार रहते हुए सिद्धार्थ को सात सप्ताह (४६ दिन) हो रहे थे। उन्होंने थाल में रखी खीर को खाया। सायंकाल वे बोधि वृक्ष (बोध गया का प्रसिद्ध पीपल का पेड़) के पास गये। सिद्धार्थ ने बोधि वृक्ष की प्रदक्षिणा की और यह प्रतिज्ञा कर बोधि वृक्ष के नीचे आसन मारकर बैठ गये कि 'चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न बाकी रह जाय, चाहे शरीर, मांस, रक्त ही क्यों न सूख जाय, लेकिन मैं 'सम्यक् संबोधि' को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा।' भगवान् उस बोधि वृक्ष के नीचे मोक्ष का आनन्द लेते हुए एक सप्ताह तक ध्यान लगाये बैठे रहे। सातवीं रात के पहले यान में उन्हें संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय का ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने जाना कि अज्ञान, वेदना, तृष्णा, उपादान, जन्म, जरा, मरण, शोक, दुःख आदि का क्या रहस्य है।

दूसरे दिन उस समाधि से उठकर वे बरगद के वृक्ष के नीचे गये। वहाँ भी एक सप्ताह तक चिन्तन में बैठे रहे। इस समाधि के बाद जब उन्होंने आँखें खोलीं तो वे पूर्णतः 'बुद्ध' हो चुके थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने करुणा भरी दृष्टि से प्राणियों की ओर देखा। प्राणियों पर दया करके वे धर्मोपदेश के लिए उद्यत हुए।

वे बुद्धगया से वाराणसी आये और वहाँ उन्होंने अपना पहला उपदेश पंचवर्गीय भिक्षुओं के सामने किया। भगवान् बुद्ध ने कहा :

'हे भिक्षुओं, इन दो अन्तों (अतियों) को प्रव्रजितों (भिक्षुओं) को सेवन नहीं करना चाहिये : एक तो काम वासनाओं के काम-सुख में लिप्त होना और दूसरा, अनर्थों से युक्त पीड़ा से आत्मा को संतप्त करना। भिक्षुओं, इन दोनों का परित्याग कर मैंने मध्यम मार्ग को खोज निकाला है। यह मध्यम मार्ग आँख देने वाले, ज्ञान कराने वाले निर्वाण का है।'

उसके बाद तथागत ने 'निर्वाण' के कल्याणकारी परिणामों को विस्तार से बताया।

आगे भगवान् ने भिक्षुओं से कहा 'भिक्षुओं, जितने भी दिव्य और मानुष बन्धन हैं, मैं उन सब से परे हूँ। तुम भी दिव्य और मानुष बन्धनों से मुक्त हो सकते हो। हे भिक्षुओं, बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओं, आदि में कल्याण, मध्य में कल्याण, अन्त में कल्याण—ऐसे धर्म का उपदेश करो—भिक्षुओं, मैं भी धर्मदेशना के लिए जाऊँगा।

उसके बाद बुद्ध उरुवेला, उत्तर कुरु (मेरु पर्वत की उत्तर दिशा) और अनवतप्त सरोवर (मानसरोवर झील) तक उपदेश करने के लिए गये।

अन्त में वि० पूर्व ४२७-२६ में तथागत यह कहते हुए महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए 'आश्चर्य भन्ते, अद्भुत् भन्ते, मैं भगवान् की शरण जाता हूँ; धर्म और भिक्षुसंघ की भी। भन्ते, मुझे भगवान् के पास से प्रव्रज्या मिले, उप संपदा मिले।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म का उदय

तथागत बुद्ध की जो शिक्षायें और उपदेश हैं उनमें दो बातों की प्रधानता है। बुद्ध ने दो तरह से कहा है। उनके विचारों का एक पक्ष तो व्यष्टिमय है और दूसरा समष्टिमय। व्यक्तिगत जीवन की सद्गति के लिये उन्होंने जो बातें कही हैं वे व्यष्टिमय; और लोकहित के लिये उन्होंने जो बातें कही हैं वे समष्टिमय कहलाती हैं। उनके व्यष्टिमय विचारों में त्याग तथा योग को बड़ा माना गया है। इस दृष्टि से बुद्ध मनुष्य पहले हैं और देवता बाद को। उनके समष्टिमय विचार में 'बहुजनहिताय' (सब के लिए कल्याण-कामना) की भावना है।

बुद्ध के पहली कोटि के विचारों के अनुसार श्रीलंका, बर्मा तथा स्थायी देशों में बौद्ध धर्म का विकास हुआ। उनकी दूसरी विचारधारा को मौर्यों, कुषाणों तथा गुप्त राजाओं ने चमकाया। मौर्यों के बाद यही परम्परा चीन, नेपाल, तिब्बत, कोरिया और जापान आदि देशों में फैली।

बौद्ध धर्म को राजधर्म का संमान

बौद्धों से पहले के भारत में वैदिक धर्म ही राजधर्म का स्थान पाता रहा। बौद्ध धर्म के बाद भी भारत के कुछ अंचलों में यद्यपि वैदिक धर्म की कुछ शाखायें, जैसे वैष्णव, शैव आदि धर्म, राजधर्म का स्थान ले रही थीं; फिर भी केन्द्र का स्थान बौद्ध धर्म ने ले लिया था।

अशोक

अशोक का नाम उन यशस्वी सम्राटों में है, जिनके कारण इस देश का नाम एशिया के अनेक देशों में फैला। स्वयं उस पर बौद्ध धर्म का इतना प्रभाव पड़ा कि वह राजा से 'प्रियदर्शी' बन गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने देश में स्थान-स्थान पर उसने बुद्ध के उपदेशों को पत्थरों पर खुदवा कर लोगों तक पहुँचाया। उसने अपनी प्रजा के आराम के लिए स्थान-स्थान पर पेड़ लगवाये, कुएँ खुदवाये और चिकित्सालय बनवाये। अपना सारा जीवन और अपने विशाल साम्राज्य की शक्ति को उसने बुद्ध के आदेशों को चमकाने तथा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में लगाया।

यही नहीं, मानवमात्र का कल्याण करने वाली इन उपकारी बातों को अशोक ने समस्त राष्ट्र और समस्त एशिया में फैलाया। उसने अपने राजदूतों को तथा धर्मसंघों को बाहरी देशों में भेजा।

अशोक ने २९७-२७२ ई० पूर्व के बीच, आज से लगभग २२-२३ सौ वर्ष पहले, २५ वर्षों तक विपत्तियों का सामना करते हुए मगध की गद्दी पर शासन किया।

कनिष्क

अशोक के लगभग ढाई, तीन-सौ वर्ष बाद कनिष्क महान् हुआ। वह ७८ ई० में राजगद्दी पर बैठा। उत्तर भारत में जिस शक संवत् का आज भी प्रचलन है और जिसको आज हमारा राष्ट्रीय संवत् माना जाता है उसको कनिष्क ने ही आरम्भ किया था। पेशावर उसकी राजधानी थी।

सम्राट् कनिष्क बौद्ध धर्म का संरक्षक था। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म के क्षेत्र में एक सुधार यह हुआ कि उसमें जो धार्मिक संकीर्णताएँ घर बना गयी थीं वे दूर हो गयीं। तथागत को अब देवता के रूप में पूजा जाने लगा था।

कनिष्क ने यद्यपि बौद्ध धर्म का समर्थन किया; किन्तु स्वयं उसका कोई धर्म नहीं था। उसके सिक्कों पर ग्रीक, ईरानी, हिन्दू और बौद्ध, सभी धर्मों के देवताओं एवं महापुरुषों की आकृतियाँ अंकित हैं। फिर भी बौद्ध धर्म के प्रति उसमें गहरी आस्था थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिये बौद्ध समाज उसको बौद्ध ही मानता है। उसने बौद्ध-साहित्य तथा बौद्ध धर्म की उन्नति के लिये बौद्ध विद्वानों की एक विराट् सभा (संगीति) का आयोजन किया था। उसी के समय बौद्ध धर्म सम्पूर्ण एशिया में फैला।

गुप्त-राज्य

गुप्त राजा भागवत धर्म के मानने वाले थे। फिर भी बौद्ध धर्म के प्रति उनका बड़ा प्रेम था। बौद्ध धर्म की उन्नति तथा वृद्धि के लिए उनसे जो कुछ हो सकता था, उन्होंने किया। बौद्ध धर्म के अनुयायी लोगों के लिए गुप्तयुग में पूरी सुविधायें थीं।

गुप्तयुग में बौद्ध धर्म की अपेक्षा बौद्धकला और बौद्ध साहित्य की अधिक उन्नति हुई। मथुरा, नालंदा, अजंता, वाघ आदि कलातीर्थों में जो कला कृतियाँ पायी जाती हैं उनको देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुप्तयुग में बौद्धकला की कितनी उन्नति हुई।

इसी प्रकार गुप्तयुग में स्थापित नालंदा महाविहार, काश्मीर, वाराणसी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी तथा विक्रमपुरी में बौद्ध-साहित्य का निरन्तर निर्माण होता रहा। नालंदा जैसे उस समय के विश्वविख्यात विद्यापीठ की स्थापना गुप्तयुग में ही हुई।

गुप्त राजवंश का समय २७५-५१० ई० के बीच निश्चित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म राजधर्म के रूप में संमान पाता रहा।

बौद्धकालीन भारत की संगीतियाँ

बौद्धयुग में धर्म और साहित्य की उन्नति के लिए तत्कालीन विद्वानों एवं भिक्षुओं ने एक साथ बैठकर जो विचार-विनिमय किया उसी को 'संगीति' के नाम से कहा गया है। इस प्रकार की चार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संगीतियाँ आयोजित हुईं। इन संगीतियों का उद्देश्य यह था कि धर्म के क्षेत्र में, समाज के क्षेत्र में, ज्ञान के क्षेत्र में और अधिकारों के क्षेत्र में जो बुराइयाँ आ गयीं थीं उनको किस प्रकार दूर किया जाय।

पहली संगीति

बुद्ध निर्वाण के लगभग चौथे मास बाद प्रथम संगीति का आयोजन हुआ। यह संगीति राजगृह के कुशीनगर में हुई। इसको अजातशत्रु ने बुलाया था। महाकश्यप इसके सभापति थे। इसमें पाँच सौ भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति का मुख्य उद्देश्य बुद्ध के उपदेशों का संग्रह तथा प्रचार करना था।

दूसरी संगीति

दूसरी संगीति बुद्ध निर्वाण के १०० वर्ष बाद वैशाली में हुई, जो पूरे आठ मास तक चलती रही। भिक्षु अजित इसके प्रधान और आचार्य सब्बकामी सभापति थे। इसमें ७०० भिक्षुओं ने भाग लिया।

इस संगीति में 'विनय' और 'धम्भ' पर नये रूप में विचार किया गया। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बुद्ध वचनों को तीन पिटकों (पिटारियों), पांच निकायों, नौ अंगों और ४८,००० धर्मस्कंधों में अलग किया गया।

तीसरी संगीति

तीसरी संगीति सम्राट् अशोक ने मगध में बुलायी थी। अशोक के गुरु तिस्स मोग्गलिपुत्त इस अधिवेशन के सभापति थे। निरन्तर नौ महीने तक वह चलती रही। उसमें १००० भिक्षुओं ने भाग लिया।

इस संगीति में अन्य अनेक सुधारों के अतिरिक्त त्रिपिटकों का अंतिम रूप से संकलन किया गया। आज के त्रिपिटकों की रूपरेखा उसी संगीति के अनुसार मानी जाती है। इस संगीति की सबसे बड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेषता यह थी कि अशोक ने बृहद् भारत और एशिया के अनेक देशों को अपने धर्म प्रचारक भिक्षुओं के शिष्ट मंडलों को भेजा।

चौथी संगीति

चौथी संगीति का आयोजन सम्राट् कनिष्क ने १०० ई० में किया था। यह परिषद् काश्मीर के कुंडलवन महाविहार में हुई। आचार्य पार्श्व इसके सभापति थे। इसमें ५०० भिक्षु शामिल हुए।

इस परिषद् में पिटकों पर भाष्य लिखने का प्रस्ताव पास किया गया। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसी समय सर्व प्रथम संस्कृत भाषा को मान्यता मिली और संस्कृत में ही आगे का कार्य किये जाने का निश्चय हुआ। इससे पहले बौद्ध धर्म के सभी ग्रंथ पालि में थे।

बौद्ध धर्म का वैदिक धर्म पर प्रभाव

यद्यपि वैदिक धर्म या ब्राह्मण धर्म की संकीर्णताओं के विरोध में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ था, फिर भी मूलतः वह वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म का ही अंश था। बौद्ध धर्म में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, सब प्राणियों पर दया करना आदि जो नीतिधर्म हैं वे वैदिक धर्मग्रंथों से ही लिये गये हैं। बौद्धों के 'धम्मपद' में हमें 'मनुस्मृति' के ही आचारों का स्वरूप देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय को अपने देश और एशिया के अनेक देशों में इतने विस्तार से अपनाये जाने का एकमात्र कारण यह था कि उसमें वासुदेव भक्ति का अनुकरण किया जाने लगा था।

एक समय ऐसा आया जब वैदिक धर्म, ब्राह्मण धर्म के रूप में एक सम्प्रदाय या गुट का धर्म बन गया था। ऐसी ही स्थिति में उसके विरोधी जैन-बौद्ध धर्मों का उदय हुआ। इन दोनों धर्मों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण वैदिक धर्म की अनेक बुराइयां दूर हुई। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि वैदिक धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ता।

उपनिषदों के वैराग्य और निराशा की भावना को जैन धर्म ने अपनाया। किन्तु उसको व्यवहार में उतारने तथा लोक में फैलाने का कार्य किया बौद्ध धर्म ने। जीवन में अनेक प्रकार के कष्टों तथा दुःखों से छुटकारा पाने के लिए बुद्ध ने बड़े सरल ढंग से समाज में वैराग्य को एकमात्र उपाय बताया। उन्होंने बताया कि मनुष्य के जीवन का वास्तविक सुख जीवित रहने में नहीं है। वह तो तब प्राप्त होता है, जब मरने के बाद फिर जन्म लेने की नौबत न आने पावे। जगत् के रूप में जो अंधकार हमें दिखायी दे रहा है, उसको दूर करने के बाद ही सच्चा सुख मिलता है।

बुद्ध के इस नये विचार को वैदिक धर्म में ज्यों-का-त्यों अपनाया गया।

इसके प्रभाव से वैदिक धर्म के मानने वाले समाज में आचार-विचार, खान-पान और सबसे अधिक छुआ-छूत तथा जात-पाँत की कुप्रथाओं में कुछ ढिलाई आयी। अहिंसा, जीवदया और दुःखियों के लिए करुणा—ये बातें समाज में बड़े जोरों से फैलीं। समाज में धम के नाम पर जो छोटे-छोटे वर्ग बन गये थे वे भी बौद्ध श्रावकों के समानता के उपदेशों से टूट गये।

बौद्ध धर्म का मानव धर्म के रूप संमान

बौद्ध धर्म की इन अच्छाइयों के कारण उसकी लोकप्रियता बढ़ती ही गयी। सारा राष्ट्र एकमत से उसका अनुयायी बन गया। बाहरी देशों में भी जहाँ-जहाँ उसका संदेश पहुँचा वहीं-वहीं उसको अपनाया गया।

किन्तु यहाँ हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भले ही बौद्ध धर्म ने वैदिक धर्म का विरोध किया, किन्तु इसी एक कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से बौद्ध धर्म को इतनी लोकप्रियता नहीं मिली। यदि वेदों का विरोध करना ही बौद्ध धर्म का एकमात्र उद्देश्य होता तो वह आगे बढ़ने की जगह कभी का मिट गया होता। बौद्ध धर्म के भीतर सबसे बड़ी बात यह थी कि उसमें वे बातें कहीं गयीं थीं, जो सारी मानवता पर लागू होती थीं। यही कारण था कि उसको मानव धर्म के रूप में संमान मिला।

तथागत बुद्ध ने अपने वर्षों के चिन्तन के बाद एक ऐसा कारण खोज निकाला, जिससे सारा संसार पीड़ित था। वह कारण था 'दुःख'। बुद्ध ने इस दुःख की ऐसे ढंग से व्याख्या की, कि वह साधारण लोगों की समझ में सरलता से आ जाय। उन्होंने बताया कि सारे संसार की अशांति का एकमात्र कारण यही दुःख है। दुःख को खोज निकालने और उसको दूर करने के लिए उन्होंने जिन उपायों को बताया वे 'चार आर्य सत्यों' के नाम से विख्यात हैं। बुद्ध के चार आर्य सत्य हैं :

१—दुःख ही जन्म, जरा (बुढ़ाई), व्याधि और अभाव का कारण है।

२—दुःख ही सारी लोभ, मोह आदि तृष्णाओं का कारण है।

३—दुःख का उन्मूलन ही सुख-शांति का कारण है।

४—दुःख से छुटकारा पाने के लिए आठ बातों का पालन करना आवश्यक है। वे आठ बातें हैं : (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

बुद्ध के उपदेश लोकभाषा पालि में थे

बुद्ध के उपदेशों और उनकी शिक्षाओं का समाज में इतना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदर मिलने का कारण यह भी था कि वे संस्कृत में न होकर लोक भाषा पालि में थे। बुद्ध की इस दूरदर्शिता के कारण एक ओर तो उनके उपदेशों को समझने में लोगों को कोई कठिनाई नहीं हुई और दूसरी ओर पालि भाषा को आगे बढ़ने का संयोग मिला।

बुद्ध ने कर्म और सदाचार पर सबसे अधिक बल दिया। उन्होंने ज्ञान और भक्ति को कर्मों के ही भीतर माना और मनुष्य को कर्म करने के लिए कहा। उनका यह कर्म-सिद्धान्त 'गीता' से प्रभावित था।

बुद्ध ने जिस धर्म का उपदेश दिया उसमें आचार की श्रेष्ठता थी। उन्होंने बताया कि मनुष्य इसलिए इतनी वेदनाओं, दुःखों और पीड़ाओं से संतप्त है कि वह आचारों का पालन नहीं करता। कर्मों के द्वारा आचारों का पाठ आता है और उससे जीवन में निर्मलता एवं शांति का आवास होता है। सत्कर्म करते रहना ही मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिए।

बुद्ध का ब्राह्मणों से कोई द्वेष नहीं था

वैदिक युग से सारी वर्णाश्रम व्यवस्था कर्मों पर नहीं, जाति पर आधारित थी। उसकी आलोचना बुद्ध ने इसलिए करना आवश्यक समझा कि उसमें व्यक्तिगत हितों की रक्षा थी, सारे समाज की नहीं। आध्यात्मिक उन्नति का एकमात्र अधिकार ब्राह्मणों या पुरोहितों ने अपने अधीन कर लिया था। इससे देश की सारी बौद्धिक प्रगति भी रुक गयी थी।

बुद्ध के धर्म में व्यक्ति-व्यक्ति की स्वतंत्रता थी। समाज के प्रति उत्तरदायी रह कर कोई भी किसी धर्म का पालन कर सकने में स्वतंत्र था। बुद्ध का धर्म, दूसरे धर्मों का विरोधी न होकर, दूसरे धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण करने वाला धर्म था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदों का यज्ञवाद और ब्राह्मणग्रंथों की कर्म-पद्धितियाँ निश्चित ही बुद्ध को मान्य नहीं थीं। यह नयी बात भी नहीं थी, क्योंकि उपनिषदों में भी यही कहा गया था। सांख्य दर्शन के पिता महर्षि कपिल ने वैदिक यज्ञों की सबसे बड़ी बुराई यह बतायी कि वे पशुहिंसा के कारण अपवित्र है, दूसरे में वे विनाश युक्त है, और तीसरे में उनमें ऊँच-नीच की भावना है।

वस्तुतः देखा जाय तो तथागत का ब्राह्मणों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेषभाव नहीं था; बल्कि ब्राह्मणों से उनके संबंध बड़े मैत्रीपूर्ण थे। यही कारण था कि जिन ब्राह्मणों ने बुद्ध के उपदेशों को सुना वे उन्हीं के उपासक या भक्त हो गये। यही कारण था कि जिस हिन्दू धर्म में तथागत को नास्तिक कह कर बदनाम किया, बाद में उसी ने बुद्ध को अपने दस अवतारों में रखकर संपूज्य समझा।

बुद्ध के उपदेश ब्राह्मण धर्म के आदर्शों के अनुरूप ही थे। बुद्ध के ब्रह्मज्ञान की व्याख्या वर्णों और आश्रमों की सीमाओं से बंधी न होकर सब के लिये थी।

बुद्ध के पुण्य-संबंधी सिद्धान्त 'गीता' से प्रभावित थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों में कही गयी पुण्य-संबंधी परिभाषाओं में दान को श्रेष्ठ यज्ञ कहा है। धर्म तथा संघ की शरण मे आ जाना और संयमपूर्वक शिक्षा पदों का पालन करना ही बुद्ध की दृष्टि से श्रेष्ठ यज्ञ है। दान करने से आनन्दलोक मिलता है। वह दान ऐसा होना चाहिये, जिसमें बुराई न हो और जो प्रसन्न होकर दिया जाय।

बुद्ध के बाद बौद्धों और ब्राह्मणों में जो द्वेष और विरोध बढ़ता गया उसका एक कारण यह भी था कि दोनों ने बुद्ध की बातों को इतनी गहरी दृष्टि से नहीं देखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म के पंथ

भगवान् तथागत के बाद बौद्ध धर्म अनेक शाखाओं में बंट गया। बुद्ध को इसकी संभावना तक नहीं थीं। यद्यपि बौद्ध धर्म के ये अनेक संप्रदाय बुद्ध के बाद ही प्रकाश में आये, किन्तु उनके बीज, बुद्ध के जीवन काल में ही बोये जा चुके थे। देवदत्त और सुभद्र जैसे लोग बुद्ध के विचारों की खुले आम आलोचना करने लगे थे।

बुद्ध की निर्वाणप्राप्ति के सौ वर्ष बाद भिक्षुओं के एक दल ने, जिसमें वैशाली के वज्जियों का प्रमुख हाथ था, बुद्धवाणी के उस संकलन के विरुद्ध आवाज लगायी, जो महाकश्यप के राजगृह की संगीति में निश्चित किया गया था। फलतः वैशाली में दूसरी सभा हुई। इसमें भी मतभेद रहा। फलतः संघ दो भागों मे बँट गया। एक कट्टर पुराणपंथी और दूसरा उदारपंथी। पहला दल 'स्थविरवाद' के नाम से और दूसरा 'महासांघिक' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आगे चलकर इन दोनों दलों की आपस में एकता न हो सकी और बुद्धनिर्वाण के लगभग तीन-सौ-वर्ष बाद स्थविरवाद की ग्यारह और महासांधिकों की सात, कुछ मिलाकर १८ उपशाखायें हो गयीं।

इन १८ उपशाखाओं के नाम क्या थे, इसका स्पष्ट लेखा नहीं मिलता है। प्राचीन शिलालेखों तथा ग्रंथों से ज्ञात होता है कि सर्वास्तिवादी, महासांघिक, चैत्यक, सम्मितीय, धर्मोत्तरीय, भद्रयानीय, महीशासक, पूर्वशैलीय, बहुश्रुतीय और काश्यपीय आदि अनेक छोटे-बड़े संघों का जन्म हो चुका था।

हीनयान और महायान

जैसे जैन धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर, इन दो प्रमुख संप्रदायों में विभक्त है उसी प्रकार बौद्ध धर्म की भी दो प्रमुख शाखायें हैं: हीनयान और महायान। इन दोनों में हीनयान प्राचीन है। उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म बुद्ध के ही समय हो चुका था। महायान का जन्म कनिष्क के समय ईसा की पहली शताब्दी में हुआ। कनिष्क के समय चौथी बौद्ध सभा में महायान के विचारों को मानने वाले आचार्य उपस्थित थे।

हीनयान और महायान, दोनों संप्रदायों की दो-दों शाखायें हुईं। हीनयान ने वैभाषिक तथा सौत्रांतिक को जन्म दिया और महायान ने योगाचार तथा माध्यमिक को।

वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार और माध्यमिक, ये चार विचार-धारायें ही बौद्ध धर्म तथा बौद्ध दर्शन के मुख्य आधार हैं। इन चारों विचारधाराओं को विस्तार से जानने के पहले महायान संप्रदाय के बारे में कुछ जान लेना आवश्यक है।

महायान की लोकप्रियता

बौद्ध धर्म में सदाचरण तथा पवित्र जीवन के लिए शिक्षा दी गयी है। इसीलिये बौद्ध धर्म को नैतिक नियमों पर आधारित धर्म कहा गया है। उसमें ईश्वर के लिये कोई स्थान नहीं। न उसमें ईश्वर को मनुष्य के भाग्य का शासक कहा गया है।

तथागत बुद्ध ने कर्मों के द्वारा मुक्ति (निर्वाण) प्राप्त करने का सहज मार्ग बताया है। किन्तु बुद्ध के बाद महायान बौद्धों ने बुद्ध को ही मनुष्य के भाग्य का शासक और वरदान देने वाला बताया है। इसलिये बौद्ध धर्म भक्ति पर आधारित धर्म बन गया। बुद्ध की शिक्षाओं के विपरीत, मुक्ति या निर्वाण को भक्ति एवं भावनामय प्रार्थना के द्वारा प्राप्त करने का नया रास्ता बताया गया। महायान संप्रदाय में भावना तथा भक्ति का उदय वैष्णव धर्म के प्रभाव से हुआ। महायान के अनुयायी बोधिसत्वों ने आत्म समर्पण करने की भावना को वासुदेव श्रीकृष्ण की भक्ति से अपनाया। इस कारण महायान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संप्रदाय को अपने देश में और विदेशों में बड़े पैमाने पर अपनाया गया। यही उसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण था।

बौद्ध धर्म के चार मुख्य सिद्धान्त

भगवान् तथागत ने जिस महान् धर्म को जन्म दिया उसमें दलगत विचारों को कोई स्थान नहीं था। दर्शन के जंजाल में पड़कर धार्मिक उपदेशों को भुला देना उन्हें मान्य नहीं था। अपने जीवनकाल में अपने अनुयायियों को उधर जाने से उन्होंने रोका, टोका और निषेध किया।

किन्तु बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके अनुयायियों में यहाँ तक विवाद बढ़ा कि उनमें से एक पक्ष ने बुद्ध के उपदेशों को मानने से इन्कार कर दिया। फलतः जैसा कि हम पढ़ चुके हैं, बौद्धधर्म में अनेक दल बन गये।

आगे चलकर, बुद्ध के विचारों के विपरीत, जब बौद्ध विद्वानों ने दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश किया तो उनके भी चार दल हो गये।

बौद्धन्याय की आवश्यकता

बौद्ध दर्शन को बौद्धन्याय भी कहा जाता है। हम बता चुके हैं कि स्वयं तथागत दर्शन की गुत्थियों में पड़ने के पक्षपाती नहीं थे। किन्तु उनके बाद सहसा ऐसे युग का उदय हुआ, जिसमें धर्म की अपेक्षा दर्शन को पहला स्थान दिया गया। ऐसी परिस्थिति में, जब कि छह वैदिक दर्शनों द्वारा बुद्ध के विचारों पर आक्षेप किए जा रहे थे, बौद्धन्याय के द्वारा ही बौद्ध धर्म की रक्षा की जा सकती थी।

फलतः चार प्रकार के विचारक सामने आये। ये चार प्रकार के विचारक चार अलग-अलग पंथों के थे। उनका विवरण इस प्रकार है :

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंथ	सिद्धान्त	मान्यता
१—वैभाषिक	प्रत्यक्षवादी	संसार सत्य, निर्वाण सत्य
२—सौत्रांतिक	वाह्यार्थानुमेयवादी	संसार सत्य, निर्वाण असत्य
३—योगाचार	विज्ञानवादी	संसार असत्य, निर्वाण सत्य
४—माध्यमिक	शून्यवादी	संसार असत्य, निर्वाण असत्य

१—प्रत्यक्षवादी विचारकों का कहना है कि संसार की प्रत्येक वस्तु में अनन्त सत्ता का आवास है। इसलिए संसार सत्य है और प्रत्येक वस्तु का निर्वाण भी सत्य है।

२—वाह्यार्थानुमेयवाद को मानने वाले विद्वानों का कहना है कि जितने भी दिखायी देने वाले पदार्थ हैं वे सब नाशवाले हैं। इसलिए उनको अनुमान से ही जाना जा सकता है, ठीक वैसे ही जैसे दर्पण में मुख की छाया देखकर मुख का अनुमान लगाया जाता है। इसलिए अनुमान के आधार पर वाह्य पदार्थ सत्य हैं, निर्वाण सत्य नहीं है।

३—विज्ञानवाद के अनुसार दर्पण में दिखायी देने वाली छाया से मुख की जानकारी प्राप्त करना मिथ्या ज्ञान है। चित् (दर्पण) ही सत्य है। उसी में हम संसार (मुख) को देखते हैं। यह चित् ही विज्ञान है।

४—शून्यवादी आचार्यों का कहना है संसार का प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है। इसलिए संसार और विज्ञान दोनों क्षणिक हैं। क्षणिक अर्थात् वे क्षण में पैदा होते हैं और क्षण में ही नष्ट हो जाते हैं। शून्य ही सत्य है।

वैभाषिक

हीनयान शाखा से वैभाषिक संप्रदाय का जन्म हुआ। सम्राट् अशोक की तीसरी बौद्ध संगीति में पाँच-सौ भिक्षुओं ने, आर्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कात्यायनीपुत्र के 'ज्ञानप्रस्थानशास्त्र' पर एक टीका लिखी थी। उसका नाम 'विभाषा' रखा गया। इसी टीका के आधार पर इस संप्रदाय का नाम 'वैभाषिक' पड़ा। सम्राट् कनिष्क ने इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

आर्य कात्यायनीपुत्र को तथागत का शिष्य बताया जाता है। वैभाषिक अभिधर्म के सभी ग्रंथ संस्कृत तथा पालि भाषाओं में न होकर चीनी तथा तिब्बती भाषाओं के अनुवादों के रूप में मिलते हैं। इन्हीं अनुवादों के आधार पर इस संप्रदाय के दो आचार्यों का पता लगता है। उनके नाम हैं : मनोरथ और संघभद्र। ये दोनों आचार्य ईसा की चौथी शताब्दी, अर्थात् गुप्तयुग में हुए।

वैभाषिक संप्रदाय, विचारों से सर्वास्तिवादी है। सर्वास्तिवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु सब जगह, सभी कालों में जीवित है। आचार्य वसुबंधु का 'अभिधर्मकोश' सर्वास्तिवाद का श्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है।

सौत्रांतिक

स्थविरवाद, बौद्ध धर्म का प्राचीन मत है। इस मत के मानने वाले स्वयं बुद्ध थे। स्थविरवाद का अर्थ है स्थविरों, अर्थात् ज्ञानी और तत्त्वदर्शियों का मत। बुद्ध के प्रथम शिष्यों को 'स्थविर' कहा गया है।

स्थविरवाद से ही सौत्रांतिक मत का जन्म हुआ। सौत्रांतिक बौद्धों का कहना है कि संसार की सभी वस्तुएँ सत्य हैं। यदि ये दिखायी देने वाली वस्तुएँ सत्य नहीं हैं तो उनका ज्ञान हमें नहीं होना चाहिए। ज्ञानरूप में ये सभी वस्तुएँ हमारे भीतर ही विद्यमान रहती हैं। जब हम घट को देखते हैं तो, हमारे भीतर पहले ही से विद्यमान उसका ज्ञान हमें घट को पहचानने में मदद देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौत्रांतिक बौद्धों का सारा साहित्य पालि भाषा में है। प्रायः जितने भी प्राचीन धार्मिक ग्रंथ हैं वे सौत्रांतिक मत से संवद्ध हैं।

योगाचार

योगाचार संप्रदाय का जन्म महायान शाखा से हुआ। आचार्य मैत्रेय या मैत्रेयनाथ इस संप्रदाय के जन्मदाता थे। उनका समय ईसा की तीसरी शताब्दी था। असंग, वसुवन्धु, दिङ्नाग और शांतरक्षित जैसे विख्यात विद्वानों ने अपने-अपने ग्रंथों में इस संप्रदाय के सिद्धान्तों की व्याख्या की।

योग द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने के कारण इस संप्रदाय का नाम 'योगाचार' पड़ा। उसके सिद्धान्त को 'विज्ञानवाद' कहा जाता है। असंग ने इसको 'योगाचार' और वसुवंधु ने 'विज्ञानवाद' के नाम से कहा। असंग ने इस संप्रदाय के सिद्धान्तों की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या की और वसुवंधु ने शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से।

माध्यमिक

यह संप्रदाय भी महायान से ही संबद्ध है। भगवान् तथागत ने वाराणसी में जो पहला धर्मोपदेश किया था वह मध्यम मार्ग का था। इस संप्रदाय के सिद्धान्तों को 'शून्यवाद' के नाम से कहा जाता है। शून्यवाद बौद्ध दर्शन का गम्भीर मत माना जाता है।

आचार्य नागार्जुन शून्यवाद का सर्वोच्च विद्वान् था। उनका समय ईसा की दूसरी शताब्दी में निश्चित है। उनका 'प्रज्ञा पारमितासूत्र' या 'माध्यमिक कारिका' माध्यमिक मत का प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह ग्रंथ तिब्बती भाषा में ही मिलता है।

आचार्य नागार्जुन के बाद आर्यदेव, बुद्धपालित, चन्द्रकीर्ति और शांतिदेव आदि आचार्यों ने माध्यमिक मत पर ग्रंथ लिखे।

चीन, जापान और तिब्बत में आज इसी मत को माना जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म का ह्रास

जिस पवित्र बौद्ध धर्म ने एक समय भारत और संसार के अन्य अनेक देशों को अपने भीतर समा लिया था और जिसने समाज की कुरीतियों तथा बुराइयों को दूर करके मानवाता की बड़ी सेवा की थी, एक समय आया कि वह अपनी जन्मभूमि में ही क्षीण हो गया। उसके क्षीण होने के कारण कुछ इस प्रकार थे :

१—स्त्रियों के भिक्षुणी होने के कारण व्यभिचार बढ़ा।

२—आत्मा को अनित्य कहने के कारण समाज के विश्वास को खो दिया।

३—श्रमण संतों ने सादे जीवन की जगह राजसी जीवन को अपना लिया।

४—पौराणिक कथाओं द्वारा बुद्ध के उपदेशों का हलकापन प्रकट किया गया।

५—मंत्र और योगाचार जैसे स्थूल आचारों का प्रचलन किया गया।

६—मंत्रयान और वज्रयान जैसे नये संप्रदायों को जन्म देकर सुख-ही-सुख की खोज की गयी।

७—इस्लाम धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण।

८—भिक्षु-भिक्षुणी, श्रावक-श्रावकी और कापालिक-कापालिकी के गुप्त व्यभिचारों के प्रचलन के कारण।

९—मद्य-मैथुन की छूट। सहजिया वज्रयानियों ने 'शून्यता और करुणा को प्रज्ञा तथा उपाय की संज्ञा देकर दोनों के बीच नर-नारी के संबंधों की नई बात रखी। उपाय का प्रतीक तो साधक हो गया और प्रज्ञा की प्रतीक नारी बन गयी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये सभी कारण थे, जिन्होंने मिलकर इस महान् मानव धर्म की जड़ें खोखली कर दीं।

आज के भारत में बौद्ध धर्म

जहां तक बौद्ध धर्म की वर्तमान स्थिति का संबंध है, वह चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, श्रीलंका, कोरिया आदि अनेक देशों में पहले की तरह लोकप्रिय है। भारत में कई सौ वर्षों बाद आज फिर उसको अपनाया जाने लगा है। उसके अच्छे आदर्शों को आज राष्ट्रीय आदर्शों के रूप में स्वीकार किया गया है। उसके पंचशील के सिद्धान्तों से संसार में शांति और सद्भाव को बढ़ावा देने के लिये मदद मिल रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म के मुख्य ग्रंथ

बौद्ध-साहित्य की ग्रंथ-सामग्री दो भाषाओं में लिखी गयी : पालि और संस्कृत में। बौद्धों के धर्मविषयक प्रायः सभी ग्रंथ पालि भाषा में लिखे गये। इसी प्रकार बौद्धों के दर्शनविषयक जितने ग्रंथ हैं वे संस्कृत भाषा में लिखे गये।

त्रिपिटक

भगवान् तथागत के बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त करने से लेकर निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करने तक, बुद्ध ने जो कुछ भी कहा उसी का संग्रह या संकलन 'त्रिपिटक' में है। त्रिपिटक, अर्थात् तीन पिटारियाँ, जिनके नाम हैं :

१—विनयपिटक

२—सुत्तपिटक

३—अभिधम्मपिटक

'विनयपिटक' में बुद्ध की उन वाणियों का संकलन है, जिनमें उपदेश की बातें कही गयी हैं; दूसरे 'सुत्तपिटक' में अनुशासन (संघविषयक नियम) संबंधी वाणियों का संकलन है; और तीसरे 'अभिधम्मपिटक' में अध्यात्म तथा नीति की बातें संकलित हैं।

त्रिपिटकों को अनुश्रुतिग्रंथ कहा गया है; अर्थात् जो मौखिक रूप में रक्षित पठन-पाठन के द्वारा वर्षों तक जीवित रहते आये हैं। मगध में उनका संकलन ३०० ई० पूर्व, अशोक द्वारा आयोजित, तीसरी बौद्ध संगीति में हुआ।

इन त्रिपिटकों में लगभग ३४ ग्रंथों का संग्रह है, जिनकी जानकारी इस चार्ट से की जा सकती है :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिपिटक

- विनयपिटक (७ ग्रन्थ)
  - सुत्तविभंग
    - महाविभंग
    - भिक्खुणीविभंग
  - खंधक
    - महावग्ग
    - चुल्लवग्ग
  - परिवार
- सुत्तपिटक (५ ग्रन्थ)
  - दीघनिकाय
  - मज्झिमनिकाय
  - संयुत्तनिकाय
  - अंगुत्तरनिकाय
  - खुद्दकनिकाय (१५ ग्रंथ)
- अभिधम्मपिटक (७ ग्रन्थ)
  - १–धम्मं संगणि
  - २–विभंग
  - ३–धातुकथा
  - ४–पुग्गलं पंजन्ति
  - ५–कथावत्थु
  - ६–यमक
  - ७–पत्थनि

१–खुद्दकपाठ, २–धम्मपद, ३–उदान, ४–इतिवुत्तक, ५–सुत्तनिपात, ६–विमानवत्थु, ७–पेतवत्थु, ८–थेरगाथा, ९–थेरीगाथा, १०–जातक, ११–निदेस, १२–पटिसंविधा, १३–अपदानि, १४–बुद्धवंश और १५–धम्मपिटक या चरीय पिटक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विनयपिटक

'विनयपिटक' में भगवान् तथागत के वे संदेश संगृहीत हैं, जिनमें संघ के लिये अनेक प्रकार के नियम बताये गये हैं। साथ ही उन परिस्थितियों का भी इस पिटक में उल्लेख है, जिनके कारण वे नियम बनाये गये। संघ में सामिल होने के लिये, उसके व्रतों का पालन करने के लिए और उनका प्रचार करने के लिए, क्या-क्या करना चाहिये, इसका भी उल्लेख 'विनयपिटक' में है।

सुत्तपिटक

'सुत्तपिटक' सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण पिटक है। इसमें भी भगवान् बुद्ध की वाणियाँ संगृहीत हैं। इसके 'धम्मपद' खण्ड में बुद्ध के ४२३ उपदेशों को २६ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इसके 'खुद्दकनिकाय' को बहुत पसन्द किया जाता है। उसमें धर्म विषयक छोटी-छोटी कथाएँ बड़े सुन्दर ढंग से कही गयी हैं। 'थेरगाथा' और 'थेरीगाथा' में भिक्षु-भिक्षुणियों की कविताएँ हैं। जातकों में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ हैं।

अभिधम्मपिटक

इसमें प्रायः उन्हीं बातों की चर्चायें मिलती हैं, जो 'सुत्तपिटक' में है; किन्तु इसमें उनको अधिक आकर्षक ढंग से कहा गया है। यह पिटक काफी बाद का है; किन्तु इसके विचार प्राचीन काल के हैं। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध जब अपने धर्म का प्रचार करने के लिए स्वर्ग गये थे तब उन्होंने देवताओं के संमुख 'अभिधम्म' का पाठ किया था। इसलिए इस पिटक का बड़ा संमान किया जाता है।

अनुपिटक

पिटकों के बाद लिखे गये पालि भाषा के समस्त ग्रंथों को अनुपिटक कहा जाता है। इन अनुपिटकों के अन्तर्गत 'नेतिप्रकरण',

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'पेटकोपदेश', 'सुत्तसंग्रह', 'मिलिन्दपन्ह', 'विसुद्धिमग्ग', 'अठ्ठकथाएँ', 'अभिधम्मत्थसंग्रह' आदि ग्रंथों की गणना की गयी है।

इनके अतिरिक्त बौद्धों के १२ वंश ग्रंथों का नाम आता है। ये वंश ग्रंथ वैदिक धर्म के पुराणों जैसे हैं, जिनमें अनेक प्रकार की ऐतिहासिक तथा धार्मिक कथाएँ संगृहीत हैं। इस प्रकार के ग्रंथों की रचना बड़े पैमाने पर होती रही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के उपदेशों की सात मुख्य बातें

भगवान् तथागत के उपदेशों या उनकी शिक्षाओं में सात बातें मुख्य हैं : १ सच्चाई, २ भलाई, ३ दुःख का अन्त, ४ विवाद से दूर, ५ शील, ६ समाधि और ७ प्रज्ञा। तथागत के सारे उपदेश इन्हीं सात वर्गों में विभाजित हैं। समस्त सांसारिक विषयों की जानकारी और उन पर विजय प्राप्त करके मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति का वास्तविक मार्ग कौन है, इन सभी बातों पर बुद्ध ने स्थिर होकर विचार किया है।

१ सच्चाई

बुद्ध के उपदेशों की सबसे बड़ी विशेषता थी उनके विचारों की सच्चाई। अपने जीवन में उन्होंने जिन बातों का अनुभव किया और जिनको आँखों से देखा उन्हीं को दूसरों के लिए कहा। उन्होंने ईश्वर, कर्म आदि न दिखाई देने वाली वस्तुओं के पीछे न भटकने के लिए लोगों को सलाह दी।

२ भलाई

बुद्ध ने लोक-जीवन के अपने सच्चे अनुभवों को लोक-जीवन की भलाई के लिए संग्रह किया। उन्होंने मानव-जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों को अलग-अलग करके परखा और उनमें केवल भलाइयों को ही लेकर उन्हें व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए लोगों से कहा। उनके चार आर्य सत्यों में इसी उद्देश्य की व्याख्या की गयी है। ये चार आर्य सत्य आगे बताये गये हैं।

३ दुःख का अन्त

मनुष्य-जीवन की अनेक पीड़ाओं को देखकर बुद्ध को वैराग्य हो गया था। उन्होंने साफ-साफ देखा कि यह संसार दुःखी है, पीड़ित है और अज्ञान में पड़ा हुआ है। उन्होंने इस दुःख, पीड़ा और अज्ञान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का कारण खोज निकाला। अपने उपदेशों में उन्होंने दुःख से छुटकारा पाने का उपाय बताया। उनके चार आर्य सत्य दुःख दूर करने के ही उपाय हैं।

४ विवाद से दूर

बुद्ध ने अपने अनुयायी भिक्षुओं को तर्कजाल में न उलझने का उपदेश किया। उन्होंने अपने जीवन में इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि उनके द्वारा दिखाया गया यह सीधा धर्म आगे चलकर दर्शन के विवादों में उलझ जायगा। उन्होंने सदा ही दार्शनिक विवादों की निन्दा की। तर्कजाल की दस बातों को उन्होंने 'अव्याकतानि' कह कर छोड़ दिया। उनका उत्तर ही नहीं दिया।

५ शील

शील के आचरण पर बुद्ध ने बड़ा जोर दिया। शील कहते हैं सदाचार को। इस सदाचार पर चलकर मनुष्य मध्यमार्ग के द्वारा अपना और समाज का बड़ा उपकार कर सकता है।

बुद्ध ने सर्वसाधारण और भिक्षुओं के लिए अलग-अलग शील बताये हैं। सर्वसाधारण के लिए उन्होंने पांच शीलों का विधान किया है। आज संसार के सभी देश मानव शांति और कल्याण के लिए 'पंचशील के सिद्धान्तों' को एकमत से स्वीकार कर चुके हैं।

बुद्ध का यह पंचशील है: (१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) यौन दुराचार से अलग रहना, (४) झूठ न बोलना और (५) नशीली वस्तुओं का सेवन न करना।

६ समाधि

मन, वचन और कर्म की पवित्रता के लिए बुद्ध ने संयम की आवश्यकता बतायी है। इसी संयम का पालन करते हुए मनुष्य शोक-आनन्द, सुःख-दुख, उल्लास-संताप से ऊपर उठकर अंत में समाधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवस्था में पहुँचता है। मन के समस्त संकल्प और संदेह समाधि से ही दूर होते हैं।

७ प्रज्ञा

बुद्ध के उपदेशों का एक भाग प्रज्ञा से संबन्धित है। प्रज्ञा कहते हैं ज्ञान को। बुद्ध ज्ञानी थे, संबुद्ध थे। बुद्ध ने बताया है कि चिन्तन और समाधि से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

चार आर्य सत्य

संबोधि (ज्ञान) प्राप्त करने के बाद जन साधारण के लिए सारनाथ में बुद्ध ने जो उपदेश दिया था, उसमें उन्होंने चार आर्य सत्यों का वर्णन किया। ये चार आर्य सत्य हैं : (१) दुःख, (२) दुःख का कारण, (३) दुःख का अन्त और (४) दुःख के अन्त का उपाय।

१ दुःख

मानव जीवन की सुख-शांति के लिए बुद्ध ने जिस सरल मार्ग को खोज निकाला था उसकी प्रेरणा उन्हें 'दुःख' से मिली। दुःख सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा यह जन्म भी दुःख है; बुढ़ापा भी दुःख है; मरण, शोक, रुदन, अप्रिय की प्राप्ति, प्रिय से वियोग भी दुःख है; रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी दुःख हैं। ये सब तृष्णा के कारण हैं, जो हमें दुःख देते हैं।

२—दुःख का कारण

दुःख का प्रबल कारण तृष्णा है। भोग की तृष्णा, संपत्ति की तृष्णा, संसार की तृष्णा, ये सभी तृष्णा के अनेक रूप हैं। इन्द्रियों के जितने भी विषय हैं उनका ख्याल तृष्णा को जन्म देता है। इसी तृष्णा के लिए राजा-महाराजा लड़े। औरों की तो बात ही क्या; माता, पिता, भाई, बहन और मित्र भी इसी तृष्णा से परस्पर लड़ पड़ते हैं। इस तृष्णा को पूरा करने के लिए जो अनेक उपाय अपनाये जाते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे ही दुःख के कारण हैं। यह 'भवचक्र' (जन्म, जरा और मृत्यु) ही दुःख का कारण है।

३—दुःख का अन्त

दुःख का मूल जिस तृष्णा का ऊपर उल्लेख किया गया है उसी का निरोध (अन्त) करना ही दुःख का अन्त करना है। इस तृष्णा का अन्त तब होता है, जब अत्यन्त प्रिय लगने वाले विषयों से मन रूठ जाय। विषयों से विमुख हो जाने पर भव (लोक) का अन्त होता है। भव के अन्त (निरोध) से पुनर्जन्म की आशंकायें मिट जाती हैं। जब जन्म-मरण पर काबू पा लिया जाता है तब शोक, दुःख, संताप, पीड़ा आदि का कोई असर नहीं होता।

इसी को दुःख का अन्त कहते हैं और यही बुद्ध की शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य है।

४—दुःख के अन्त का उपाय

दुःख क्या है, वह क्यों होता है और उसका अन्त कर देने से क्या लाभ है—इन तीन आर्य सत्यों के बाद चौथा आर्य सत्य है दुःखों के अन्त करने का उपाय।

जिन कारणों से दुःख होता है उन कारणों को जिन उपायों से नष्ट किया जाता है, वह है निर्वाण। यह निर्वाण मार्ग ही दुःख दूर करने का उपाय है। यह निर्वाण मार्ग आठ तरह का है, जिसको 'अष्टांगिक' कहा गया है।

अष्टांगिक मार्ग

इन आठ मार्गों के नाम हैं : १—सम्यक् दृष्टि, २—सम्यक् संकल्प, ३—सम्यक् वाणी, ४—सम्यक् कर्म, ५—सम्यक् जीविका, ६—सम्यक् प्रयत्न, ७—सम्यक् स्मृति और ८—सम्यक् समाधि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१—सम्यक् दृष्टि : शरीर, वाणी और मन से भले-बुरे कर्मों का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना ही 'सम्यक् दृष्टि' है। हिंसा, चोरी तथा व्यभिचार—ये शरीर के द्वारा होने वाले दुष्कर्म हैं। झूठ बोलना, चुगलखोरी करना, कटु बोलना तथा व्यर्थ बोलना ये वाणी के द्वारा होने वाले दुष्कर्म हैं। लोभ, प्रतिहिंसा तथा झूठी धारणा--ये मन के द्वारा होने वाले दुष्कर्म हैं।

इन तीनों प्रकार के दुष्कर्मों को सही-सही जान लेना ही 'सम्यक् दृष्टि' है।

२—सम्यक् संकल्प : आर्य सत्यों के अनुसार जीवन बिताने की दृढ़ इच्छा करना ही 'संकल्प' है। राग, हिंसा तथा प्रतिहिंसा का परित्याग करना ही 'सम्यक् संकल्प' है।

६—सम्यक् वाणी : झूठी बात, चुगलखोरी, कटु बोलना और व्यर्थ बोलना—इन सब का परित्याग कर इनकी जगह सत्य, सही, मीठा तथा काम की बात बोलना ही 'सम्यक् वाणी' है।

४—सम्यक् कर्म : हिंसा, चोरी और व्यभिचार से अछूते रह कर जो कार्य किये जाते हैं उन्हीं को 'सम्यक् कर्म' कहते हैं।

५—सम्यक् जीविका : छल, कपट और बुरे कर्मों की जगह निश्छल, निष्कपट और भले कर्मों के द्वारा जीविका को चलाते रहना ही 'सम्यक् जीविका' है। किसी को मारना, किसी से युद्ध करना, मद्य का व्यापार करना और विष का व्यापार करना, झूठी आजीविका है। इनका त्याग ही सच्ची जीविका है।

६—सम्यक् प्रयत्न : बुरी भावनाओं को छोड़कर अच्छी भावनाओं को अपनाना ही 'सम्यक् प्रयत्न' है। १—पुराने बुरे भावों को छोड़ देना, २—नये बुरे भावों को न अपनाना,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३—मन में हमेशा अच्छे विचार रखना और ४—शुभ विचारों को मन में स्थान देना—ये चार प्रकार के प्रयत्न कहे गये हैं।

७—सम्यक् स्मृति : शरीर को शरीर, वेदना को वेदना, चित्त को चित्त और मन को मन के रूप में सदा याद करते रहना ही 'सम्यक् स्मृति' है। ये ही सुख-दुःख के कारण हैं। यदि इनका हमें ठीक तरह से स्मरण रहेगा तो हम अपने उचित कार्यों पर ही लगे रहेंगे।

८—सम्यक् समाधि : चित्त की एकाग्रता ही 'समाधि' है। चित्त की एकाग्रता के लिए बुद्ध ने कहा है कि 'सारी बुराइयों से दूर रहकर अच्छाइयों का अर्जन करते रहने से चित्त का संयम करना चाहिए। यह संयम ब्रह्मचर्य के पालन से ही सम्भव है।'

सम्यक् समाधि ही 'पूर्ण प्रज्ञा' की अवस्था है। उसी को निर्वाण कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीत्य समुत्पाद

प्रतीत्य समुत्पाद को बुद्ध ने धर्म के नाम से कहा है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु की उत्पत्ति ही बुद्ध का 'प्रतीत्य समुत्पाद' है।

प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कोई कारण होता है। इसी कारण को बुद्ध ने 'प्रत्यय कहा है। यह कारण (प्रत्यय), किसी वस्तु या घटना के प्रकाश में आने पहले क्षण, लुप्त रहता है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु या घटना क्षण भर के लिए उत्पन्न हो कर फिर नष्ट हो जाती है।

बुद्ध का यह मध्यम मार्ग है। इस मत के अनुसार प्रत्येक वस्तु के होने में कोई सन्देह नहीं है; किन्तु वे नित्य नहीं है। उनकी उत्पत्ति अन्य वस्तुओं से होती है। इसलिए वस्तुओं का पूर्ण विनाश नहीं होता। उनका कुछ अस्तित्व बचा रह जाता है। इसलिये प्रत्येक वस्तु न तो पूरी तरह नित्य (सदा रहने वाली) है और न अनित्य (सदा न रहने वाली) ही है।

इस मध्यम मार्ग को 'अनित्यवाद' और 'क्षणिकवाद' के सिद्धान्त में ठीक तरह से समझा जा सकता है।

अनित्यवाद

अनित्यवाद के अनुसार जो वस्तुएँ नित्य तथा स्थायी जान पड़ती हैं वे भी नष्ट हो जाती हैं और जो महान् दिखाई पड़ती हैं वे भी मिट जाती हैं। जहाँ संयोग है वहाँ वियोग भी है; जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु भी है। इसलिये सभी कुछ अनित्य (न टिकने वाला) है। संसार की सभी वस्तुएँ अनित्य धर्मों के संघात पर टिकी है। अतः वे अनित्य हैं। उनमें उत्पत्ति है, स्थिति है और निरोध है। बुद्ध का यही 'अनित्यवाद' है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षणिकवाद

बुद्ध ने जिसको अनित्यवाद के नाम से कहा, बुद्ध के अनुयायियों ने उसी को 'क्षणिकवाद' नाम दिया। क्षणिकवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु तो है ही, साथ ही प्रत्येक वस्तु की सत्ता क्षण भर से अधिक नहीं हैं। एक वस्तु में एक समय एक ही कार्य हो सकता है, दूसरे क्षण दूसरा कार्य। एक बीज एक क्षण में एक ही क्रया उत्पन्न करता है। एक क्षण में वह पौधे को जन्म देता है तो दूसरे क्षण वह कुछ बढ़ जाती है। दूसरा क्षण आने पर उसका पहला क्षण समाप्त हो जाता है।

इसका यह आशय हुआ कि विकास की क्रिया में कोई भी दो क्षण एक ही नहीं है। इस दृष्टि से कोई भी मनुष्य या वस्तु किन्हीं दो क्षणों में एक जैसी नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपने जन्म के साथ मृत्यु को भी बाँधे रहती है। इसलिए प्रिय के प्रति आसक्ति और अप्रिय के प्रति विराग, दोनों क्षणिक हैं।

किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि क्षणिक समझ कर मनुष्य, जीवन की सभी दिशाओं के प्रति अकर्मण्य बन जाय; बल्कि मनुष्य को चाहिए कि वह आने वाले क्षण को अपनी रुचि के अनुसार उन्नत बनाने की ओर अग्रसर हो।

अनात्मवाद

भगवान् बुद्ध का कहना है कि रूप, वेदना, संस्कार, संज्ञा और विज्ञान—इन पांच वस्तुओं के संघात (मेल) से हमारा शरीर बना है। ये पाँचो वस्तुएँ अनित्य है। अतएव वे दुःखप्रद हैं। ऐसा सोचना कि 'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ' तथा 'यह मेरा आत्मा है' सर्वथा अनुचित है। इनकी असारता को बुद्ध ने प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार सिद्ध किया है :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रश्न—रूप अनित्य हैं या नित्य ?

उत्तर—अनित्य ।

प्रश्न—जो अनित्य है वह सुख है या दुःख ?

उत्तर—दुःख ।

प्रश्न—जो चीज अनित्य है, दुःख है, क्या उसके सम्बन्ध में इस प्रकार सोचना ठीक है 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरी आत्मा है' ।

उत्तर—नहीं ।

रूप, वेदना, संस्कार संज्ञा और विज्ञान—इन पांच वस्तुओं के मेल से बने हुए इस शरीर का तथा इसमें रहने वाले आत्मा का असली स्वरूप क्या है, इसका परिचय हमें एक कथा से मिलता है :

पाँच स्कन्धों का संघात

एक बार एक ग्रीक राजा, एक बौद्ध भिक्षु के पास गया । उस भिक्षु का नाम था नागसेन । राजा ने नागसेन से पूछा 'महाराज, आप कहते हैं कि हमारे व्यक्तित्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो स्थिर हो । फिर यह बताइये कि वह क्या है, जो संघ के सदस्यों को आज्ञा देता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, उपासना करता है, निर्वाण प्राप्त करता है और पाप-पुण्य का फल भोगता है ? आपको संघ के सदस्य नागसेन कहते हैं । यह नागसेन कौन है ? क्या सिर के बाल नागसेन हैं ?

फिक्षु ने उत्तर दिया 'ऐसा नहीं है' ।

राजा ने कहा 'क्या ये दाँत, माँस तथा मस्तिष्क आदि नागसेन हैं' ?

'नहीं' भिक्षु ने कहा ।

राजा का प्रश्न था 'फिर क्या आकार, वेदनाएँ अथवा संस्कार नागसेन है' ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'नहीं' भिक्षु का फिर वही उत्तर था।

'तो क्या ये सब वस्तुएँ मिलकर नागसेन कहलाती हैं। या इनके बाहर कोई वस्तु है, जो नागसेन है' ?

उत्तर था 'नहीं'।

'तो फिर इसका यह मतलब हुआ कि नगसेन कुछ नहीं है। जिसे हम अपने सामने देख रहे हैं और जिस को हम नागसेन कह रहे हैं वह कौन है' ?

भिक्षु ने राजा के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उसने राजा से ही प्रश्न करना आरम्भ किया। कहा 'राजन्, क्या आप पैदल आये हैं' ?

'नहीं, रथ पर' राजा ने कहा।

'फिर तो आप जरूर जानते होंगे कि रथ क्या है। क्या यह पताका रथ है ?' भिक्षु ने प्रश्न किया।

राजा का उत्तर था 'नहीं।'

'क्या ये पहिये या यह धुरी रथ है ?'

'नहीं।'

'फिर क्या ये रस्सियां या यह चाबुक रथ है ?'

'नहीं।'

'तो क्या इनके बाहर कोई चीज है, जो रथ है ?'

'नहीं।'

अब भिक्षु ने समझाया 'तो फिर रथ कुछ नहीं है। जिसे हम अपने सामने देख रहे हैं और रथ कह रहे हैं, यह क्या है ?' इस पर राजा बोला 'इन सब के साथ होने पर ही उसे रथ कहा जाता है, महात्मन्।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पर भिक्षु नागसेन ने कहा 'राजन्, तुम ठीक कहते हो। ये सब वस्तुएँ ही मिलकर रथ है। इसी प्रकार पांच स्कंधों के संघात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

बुद्ध का कहना है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा भी नष्ट हो जाता है। हमारी यह काया ही जब क्षणिक है तो आत्मा जैसी स्थिर वस्तु उसमें रह ही नहीं सकती है।

जन्म-मरण के प्रश्न को लेकर जब किसी ने बुद्ध से प्रश्न किया तो बुद्ध ने उस जिज्ञासु को समझाया कि 'शरीर ही आत्मा है, ऐसा मानना एक अन्त है; और शरीर से भिन्न आत्मा है, ऐसा मानना दूसरा अन्त है। मैं इन दोनों को छोड़कर मध्यम मार्ग का उपदेश देता हूँ।'

पुनर्जन्म

बुद्ध ने जरा-मरण के रहस्य को समझ कर उनसे छुटकारा पाने के लिए चार आर्य सत्यों का उपदेश किया। जिनके होने से यह जरा-मरण का दुःख होता है, बुद्ध ने उसके बारह कारण बताये हैं: (१) अवधि, (२) संस्कार, (३) विज्ञान, (४) नामरूप, (५) षड़ायतन, (६) स्पर्श, (७) वेदना, (८) तृष्णा, (६) उपादान, (१०) भव, (११) जाति और (१२) जरा-मरण।

बुद्ध का कथन है कि जीव का इससे भी पहले कोई जन्म अवश्य था, जिसके कारण मनुष्य अज्ञान (अविद्या) के अंधकार में पड़ा है। ये जन्मान्तर के बुरे कर्म ही 'संस्कार' है। उन कर्मों को भोगने के लिए मनुष्य इस जन्म में आया, इसका रहस्य 'विज्ञान' बताता है। जन्म लेने के बाद मनुष्य का 'नाम रूप' अर्थात् भौतिक और मानसिक स्वरूप मिले। उसके बाद उसके शरीर में छह इन्द्रियों का समावेश हुआ और तब उसको 'षडायतन' (छह इन्द्रियों वाला) कहा गया। इन्द्रियों के प्राप्त हो जाने के बाद जीव में बाहरी जगत् के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'स्पर्श' की अनुभूति हुई, जिसके फलस्वरूप उसको 'वेदना' का अनुभव हुआ। इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उसमें 'तृष्णा' जागी, जिससे वह सुख-दुःख की वस्तुओं की ओर लपका, इसी को 'उपादान' (ग्रहण करना) या आसक्ति कहा जाता है। इस प्रकार वह संसार (भव) के अच्छे-बुरे कार्यों की ओर प्रवृत्त हुआ। इन कार्यों के कारण उसको दूसरे जन्म (जाति) में लिप्त होना पड़ा, जिसका परिणाम मृत्यु, अर्थात् जरा-मरण है।

इस भवचक्र या संसारचक्र में मनुष्य तब तक घूमता रहता है, जब तक उसका अज्ञान नष्ट न हो जाय; क्योंकि यह अज्ञान ही तृष्णा का कारण है।

कर्मों का फल मनुष्य के वश में है

बुद्ध ने कर्मों की भवितव्यता को स्वीकार किया है। एक बार एक शिष्य का सिर फट गया। वह वेदना का मारा, बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने उसको बाताया 'हे अर्हत्, इसे ऐसा ही सहन करो।...... तुम अपने उन कर्मों का फल भुगत रहे हो, जिनके कारण तुम्हें लम्बे समय तक नरक जैसा कष्ट झेलना पड़ता।'

बुद्ध तथा अन्य बौद्ध विचारकों के अनुसार जीव या मनुष्य का वर्तमान जीवन, उसके पहले जीवन के कर्मों का परिणाम है। इसी प्रकार उसके वर्तमान जीवन के कर्म उसके भावी जीवन का फल निर्धारित करते हैं। यह कर्मफल जीव को उसके चरित्र के अनुसार मिलता है। 'जैसा कार्य जो करेगा, वैसा ही उसको फल मिलेगा।'

किन्तु यह न समझना चाहिए कि मनुष्य, कर्मों के वश में है, बल्कि कर्म उसके वश में है। यह उसके वर्तमान जीवन के कार्यों पर निर्भर है कि वह अपना भविष्य पापमय बनाये या पुण्यमय।

यह जन्म-मरण कर्मों का ही फल है। त्याग, वैराग्य और चिन्तन से पूर्वजन्म के कर्मों का नाश और परजन्म के कर्मों का संचय प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर जन्म-मरण से छुटकारा पाया जा सकता है। यही छुटकारा मुक्ति या निर्वाण है।

निर्वाण

बुद्ध के शब्दों में निर्वाण कहते हैं बुझ जाने को। दीपक में डाले गये तेल के समाप्त हो जाने पर जैसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार काम, भोग, पुनर्जन्म और आत्मा आदि आस्रवों (नशों) के क्षीण हो जाने पर जन्म-मृत्यु का चक्र शांत हो जाता है।

निर्वाण का आशय जीवन का समाप्त हो जाना नहीं है; बल्कि जीवन की अनन्त शांति पा जाना है। निर्वाण से जो 'बुझने' का अर्थ लिया गया है उसका आशय जीवन का 'अन्त' न होकर लोभ, तृष्णा, घृणा, हिंसा आदि प्रवृत्तियों का क्षय हो जाना है। जब वासनायें बुझ जाती हैं तब यह संसारचक्र भी समाप्त हो जाता है। जीवन के इन आस्रवों (नशों) का ठंडा पड़ जाना ही जीवन का निर्वाण है। इसलिए निर्वाण को 'सितिभाव की अवस्था' कहा गया है।

राग, द्वेष, घृणा, कर्म आदि बंधन के बीज हैं। इन्हीं से पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म का चक्र चलता है। बीज का निरोध कर देने पर वह अंकुरित तथा पल्लवित नहीं होने पाता।

निर्वाण, वस्तुतः निःश्रेयस, मुक्ति, कल्याण, अमृत, आनन्द, शांति और शिवत्व की अवस्था है।

बौद्धों के प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'धम्मपद' में कहा गया है कि 'स्वास्थ्य की प्राप्ति का बड़ा लाभ है, संतोष ही सबसे बड़ा धन है, विश्वास ही सबसे बड़ा संबंधी है और निर्वाण ही परम सुख है :'

आरोग्य परमा लाभा संतुठ्ठि परमं धनम्।
विस्साम परमा जाति निब्वाणं परमं सुखम्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षुधर्म

प्रव्रज्या तथा उपसंपदा देने का प्रकार

'जब अनेक जनपदों एवं दिशाओं से लोग प्रव्रज्या की इच्छा से उपसंपदा लेने के लिए बुद्ध भगवान् के पास बड़ी संख्या में आने लगे तो उन्होंने सोचा कि 'क्यों न भिक्षुओं को ही मै उपसंपदा तथा प्रव्रज्या देने का आदेश दे दूँ !' अतः बुद्ध ने एकत्रित भिक्षुसंघ को धर्मोपदेश करने के बाद कहा 'हे भिक्षुओं, मै तुम्हें स्वीकृति देता हूँ कि तुम जिन-जिन दिशाओं या जनपदों में जाओ वहाँ के लोगों को स्वयं ही प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दो। उपसम्पदा देने का यह प्रकार है : पहले सिर तथा दाढ़ी के बाल साफ कराने चाहिए। फिर कषाय वस्त्र धारण कराने चाहिए। फिर एक कंधे पर अंगोछा रखाना चाहिए। फिर भिक्षुओं की पाद-वंदना करनी चाहिए। फिर उकडूं बैठकर तथा हाथ जोड़कर ऐसा कहना चाहिए बुद्ध की शरण लेता हूँ, धर्म की शरण लेता हूँ, संघ की शरण लेता हूँ। इसी को तीन बार दुहराना चाहिए।

भिक्षुओं के लिए नियम

उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में थे। उन्होंने देखा कि भिक्षुजन शरीर, जांघ, हाथ, छाती आदि को पेड़ों की छाल से रगड़ रहे हैं। लोगों को देखकर आश्चर्य होता कि ये कैसे श्रमण हैं, जो पहलवानों की तरह मालिश कर रहे हैं। इसी प्रकार की दूसरी बातों को भिक्षु अनजाने में कर रहे थे।

इसलिए भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा :

१—भिक्षुओं, नहाते समय वृक्ष से शरीर न रगड़ना चाहिए। जो रगड़े उसको दुष्कृत की आपत्ति है।

२—भिक्षुओं, बाली नहीं धारण करनी चाहिए। संकल, कंठशूत्र, कटिसूत्र, कटिभूषण, केयूर, हाथ का आभरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अंगुली की अंगूठियाँ भी धारण न करनी चाहिए। ये सब दुष्कृत हैं।

३—भिक्षुओं, लम्बे केश नहीं रखने चाहिएँ। दो मास तक या दो अंगुल केश रखने की आज्ञा देता हूँ। दर्पण या जलपात्र में मुंह न देखना चाहिए।

४—भिक्षुओं, लम्बे स्वर में धर्म को गाने में पाँच बुराइयाँ है: १—स्वयं भी उस स्वर में राग होता है, २—दूसरे को भी राग होता है, ३—गृहस्थ भी खिन्न होते हैं, ४ आलाप लेने वाली की समाधि भंग होती है और ५ आने वाली जनता भी वैसा ही अनुकरण करती है। गीत-स्वर में धर्म को न गाना चाहिए।

तथागत ने बताया है कि भिक्षुओं को चाहिए कि वे इन नियमों का पालन करें।

सच्चा साधु

एक दिन भगवान् बुद्ध से पास पूर्ण नामक शिष्य आया और उसने बुद्ध से 'सुनापरांत' (सीमाप्रांत) नाम के प्रदेश में धर्म प्रचारार्थ जाने की आज्ञा मांगी। बुद्ध ने उससे कहा 'उस प्रदेश के लोग तो बड़े कठोर हैं। वे तुम्हें गाली देंगे, तुम्हारी निंदा करेंगे, तो तुम्हें कैसा लगेगा ?'

पूर्ण ने उत्तर दिया 'भगवन्, मैं समझूंगा कि वे लोग बड़े भले हैं, क्योंकि वे मुझे थप्पड़-घूँसे तो नहीं मारेंगे।'

'यदि वे तुम्हें थप्पड़-घूसें मारने लगें तो ?' बुद्ध ने प्रश्न किया।

'वे मुझे पत्थर या डंडों से तो नहीं पीटते, इसलिए मैं तो उन्हें अच्छा ही लोग मानूँगा', पूर्ण ने उत्तर दिया।

'वे तुम्हें पत्थर-डंडों से भी पीट सकते हैं' बुद्ध ने कहा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'फिर भी वे शस्त्र से तो नहीं मारते। अतः उनको मै दयालु ही मानूंगा' पूर्ण का उत्तर था।

'यदि वे शस्त्र से भी तुम पर आक्रमण करें तो?' बुद्ध ने प्रश्न किया।

'तो, भगवन्, फिर भी वे मुझे मार नहीं डालते हैं। इसमें मुझे उनकी कृपा ही दिखायी देती है' पूर्ण ने उत्तर दिया।

'यह कैसे कहा जा सकता है कि वे तुम्हारा वध न करेंगे?' बुद्ध ने अपने शिष्य की पूरी परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा।

किन्तु पूर्ण का उत्तर था 'भगवन्, यह संसार दुःखरूप है। यह शरीर रोगों का घर है। आत्मघात पाप है। इसलिए जीवन धारण करना ही पड़ता है। यदि सीमाप्रांत (सुनापरांत) के लोग मुझे मार ही डालेंगे तो मैं उनका यह उपकार ही समझूँगा। फिर भी वे लोग अच्छे ही हैं।'

इस पर भगवान् बुद्ध ने प्रसन्न होकर कहा 'पूर्ण, जो किसी भी दशा में किसी को भी दोषी नहीं देखता, वही सच्चा साधु है। तुम अब जहां चाहो, जा सकते हो। सभी जगह धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।'

त्याग और वैराग्य

बुद्धचर्या से

मध्य देश के महातिथ्य नामक गाँव में कपिल ब्राह्मण के घर एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम था पिप्पली माणवक। उसकी माता ने उसको वैवाहिक बंधन में बांधने की बार-बार चेष्ठा की, किन्तु उसका एक ही उत्तर था 'मैं अपने सारे संबंध, यौवन और धन आदि को त्याग कर संन्यास लूँगा। प्रव्रजित होना ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु माता भी पूरी हठी थी, जैसा कि स्वाभाविक भी है। उसने पुत्र की बात को न माना। अंत में माणवक ने एक हजार स्वर्ण मुद्रा (निष्क) लागत की एक स्वर्ण प्रतिमा बनाकर वैसी ही पत्नी ला देने के लिए माता से कहा। उसका ऐसा करना समय टालना था।

इस पर माता ने देश के कोने-कोने में अपने ब्राह्मणों के द्वारा रूपवती कन्याओं को छना डाला। अंत में मद्र देश में एक रूपवती कन्या मिल ही गयी। उसका नाम था कापिलायिनी। माणवक ने जब ऐसा सुना तो उसने कापिलायिनी को पत्र में लिखा 'आपको अपनी जाति, गोव और रूप-रंग के अनुरूप ही गृहस्थ धर्म स्वीकार करना चाहिए, मेरा प्रव्रजित होने का विचार है।' संयोग था कि जब कापिलायिनी ने अपने विवाह की चर्चा सुनी तो उसने भी गुप्त रूप में माणवक को ऐसा ही पत्र लिखा।

दोनों के पत्र लेकर दो निजी दूत जब एक-दूसरे के यहां जाने लगे तो रास्ते में ही उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने पत्र खोले और उनकी जगह अनुकूल पत्र लिख कर एक-दूसरे के यहाँ पहुँचा दिये। दोनों का विवाह भी हो गया। किन्तु दोनों ने एक-दूसरे को स्पर्श तक नहीं किया।

कुछ दिनों बाद जब माता-पिता का देहान्त हो गया तो माणवक ने गृहस्थ में प्रवेश करने की बड़ी चेष्टा की। किन्तु मन वैसा करने को राजी न हुआ।

एक दिन वह सैर करने के लिए बाहर निकला। वहां पेड़ के नीचे उसने देखा कि कौवे, कीड़े-मकोड़ों को खा रहे हैं। ये ही बातें घर पर कापिलायिनी ने भी देखी। फलतः दोनों ने एक-दूसरे का संस्कार किया और संन्यासी बन कर वे साथ ही झोली लेकर निकल पड़े। लोग उन्हें देखते और मन-ही-मन बिलख उठते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक दिन माणवक ने बड़ी सहजता से कहा 'देवि, हमारा एक साथ रहना उचित नहीं है। लोग कहेंगे कि माणवक संन्यासी होने पर भी स्त्री के मोह को नहीं छोड़ पाया। इस प्रकार हमारे संबंध में गलत बातें सोच करके लोगों को पाप लगेगा।'

इस पर काम्पिलायिनी ने कहा 'आर्य पुत्र की आज्ञा सर्वथा पालनीय है।' उसने माणवक की चरण-वन्दना की और प्रसन्न होकर अलग हो गयी।

माणवक, भगवान् बुद्ध के दर्शन करने के लिए वेणुवन की ओर चल पड़ा। बुद्ध ने उसे दीक्षा दी और भिक्षा के लिए उसके साथ निकल पड़े। अब उसको स्थविर महाकाश्यप के नये नाम से कहा जाने लगा।

चलते-चलते एकाएक तथागत राजगृह और नालन्दा के बीच एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। स्थविर माणवक ने विश्राम के लिए तथागत के नीचे अपनी रेशमी संघाटी बिछा दी। तथागत ने मन-ही मन सोचा 'कितना कोमल है यह।' माणवक ने फिर कहा 'प्रभु, इसे धारण करें।'

'क्या तुम हमारी जीर्ण-शीर्ण गुदड़ी पहन सकते हो? चिथड़ों को सीकर पहनने वाला ही इसे उपयोग में ला सकता है, काश्यप' कह कर तथागत उसकी ओर देखने लगे।

'जिसे मैंने अपार धन और अत्यन्त रूपवती पत्नी के बदले में प्रस्त किया है उस वैराग्य का भाव गिरने न पायेगा। भन्ते, चीवर परिवर्त्तन ही हमारे संन्यास का अन्तिम मूल्य है' ऐसा कह महाकाश्यप ने भगवान् का चीवर धारण कर लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिंसा की हिंसा पर विजय

बुद्धचर्या से

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह में विहार कर रहे थे। उनका चचेरा भाई देवदत्त उनसे बड़ी ईर्ष्या रखता था।

अनेक भिक्षुओं के साथ भिक्षा के लिए बुद्ध ने नगर में प्रवेश किया कि देवदत्त के आदेश से महावत ने राजपथ पर नीलगिरि नामक प्रचण्ड हाथी को छोड़ दिया। मतवाला हाथी बड़े वेग से उधर की ओर भागा, जहां से भिक्षुओं सहित बुद्ध आ रहे थे।

दूर से हाथी आता देख भिक्षुओं ने बुद्ध से निवेदन किया 'प्रभो, मतवाला नीलगिरि आ रहा है। मार डालेगा। रास्ते से हट जाइये।'

'अहिंसा की ताकत बहुत बड़ी है, भिक्षुओं' तथागत ने आश्वासन दिया।

इधर से भिक्षुओं की कतार और उधर से मतवाला हाथी। जिसने भी सुना इस अनहोनी को देखने के लिए वहीं आ पहुँचा। राजपथ के दोनों किनारे और घरों की छतें देखने वालों से भर गयीं।

दुराचारियों को प्रसन्नता थी और सदाचारियों को चिन्ता।

नीलगिरि ज्यों ही बुद्ध के पास आया कि बुद्ध की आखों को देखते ही वह मैत्री भावना से भर कर करुणा के मारे आँसू बहाने लगा। बुद्ध की अहिंसा दृष्टि से उसकी हिंसा दृष्टि क्षीण हो गयी। उसने सूंड़ नीचे करके भगवान् तथागत की वन्दना की। उनके चरणों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की धूलि अपने शिर पर रखी और नीचा मस्तम किये वह जहां से आया था उसी ओर लौट पड़ा।

इसको कहते हैं अहिंसा की हिंसा पर विजय।

भगवान् तथागत की इसी अहिंसाभावना ने ही बौद्ध धर्म की लोकप्रियता को बढ़ाया। बुद्ध ने अहिंसा और जीवदया का उपदेश ही नहीं दिया; बल्कि उसे अपने जीवन में और अपने अनुयायियों के आचरण में क्रियान्वित भी किया। बुद्ध भगवान् के अहिंसावल ने सर्वत्र ही उनके पवित्र आदर्शों की रक्षा की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य धर्मों की व्याख्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य धर्मों की व्याख्या

वैष्णव धर्म

हमारे धार्मिक इतिहास में वैष्णव धर्म का मुख्य स्थान है। उसकी प्रतिष्ठा वैदिक काल में ही हो चुकी थी। 'महाभारत' के शांतिपर्व (अध्याय ३४९) में भीष्म पितामह ने जिन पाँच मुख्य धर्मों का वर्णन किया है उनके नाम है : १ पांचरात्र, २ पाशुपत, ३ वेदान्त, ४ सांख्य और ५ योग। इनमें वेदान्त, सांख्य और योग-ये तीनों धार्मिक मत मुख्यतः दर्शनशास्त्र से संबद्ध हैं। शेष दोनों पांचरात्र और पाशुपत का ही नाम क्रमशः वैष्णव धर्म और शैव धर्म है। वैष्णव धर्म का एक नाम भागवत धर्म भी है।

हमारे धार्मिक साहित्य में ईश्वर की सगुण उपासना का उदय विष्णु और शिव को आधार मान कर हुआ। वैदिक युग में वरुण, इन्द्र, विष्णु और शिव, इनमें विष्णु को ही मुख्य देवता माना गया। 'महाभारत' के समय तक विष्णु को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में पूजा जाने लगा।

राम और कृष्ण, विष्णु के ही अवतार हुए, जिनकी पूजा आज के समाज में भी प्रचलित है। विष्णु, राम और कृष्ण इन तीनों देवताओं की पूजा-अर्चना के कारण हमारे धर्मप्राण समाज में वैष्णव धर्म के अनुयायियों के अनेक वर्ग बन गये। ये अनेक वर्ग वस्तुतः वैष्णव धर्म के विकास के परिचायक हैं। इनके मुख्य आचार्यों के नाम हैं यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निम्बार्काचार्य। सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि हिन्दी के भक्तियुगीन कवियों के पदों में इसी वैष्णव धर्म की महिमा का गायन किया है।

वैसे तो वैष्णव धर्म के विभिन्न पंथों के अपने-अपने स्वतंत्र धार्मिक सिद्धान्त और अपनी-अपनी स्वतंत्र आचार-परम्परायें हैं; किन्तु मुख्य रूप से जिन बातों का सारा वैष्णवधर्मी समाज पालन करता है वे हैं सच बोलना, मीठा बोलना, अच्छा बोलना, अच्छे को दान देना, अच्छे ग्रंथों को पढ़ना, दुःखियों की सहायता करना, शरण में आये हुए की रक्षा करना, दरिद्र का दुःख दूर करना, भगवान् का दास बने रहना और गुरु तथा शास्त्रों पर विश्वास रखना।

शैव धर्म

शैव धर्म वैदिक युग का धर्म है। 'महाभारत' में उसको पाशुपत धर्म कहा गया है। शैव धर्म में तप का बड़ा महत्त्व माना गया है। इसलिए शैव धर्म के मानने वाले लोग केवल वायु खाकर या जल पीकर या धूम्र पी कर या एक पैर से खड़ा होकर अथवा पानी में खड़ा रह कर तप किया करते हैं।

वैष्णव धर्म की भाँति शैव धर्म की भी बाद में अनेक शाखायें हो गयीं। उनमें मुख्य हैं : सामान्य शैव, मिश्र शैव, वीर शैव, कापालिक शैव और काश्मीर शैव।

सामान्य शैव लोग भस्म लगाते हैं, शिवलिंग की पूजा करते हैं, शिव की कथा सुनते हैं और शिव की भक्ति करतें हैं।

मिश्र शैव पीठस्थ शिवलिंग की पूजा करते हैं और साथ ही विष्णु, पार्वती, गणपति तथा सूर्य की भी पूजा करते है। इन्हे मिश्र इसलिए कहा गया कि ये वैष्णव और शैव दोनों धर्मों के आचारों को मानने वाले होते हैं।

वीर शैव, ब्रह्मरूप निराकार शिव की उपासना करते हैं। वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णाश्रम धर्म को मानते हैं। उनको 'वीर' इसलिए कहा गया है कि वे शिवलिंग से एक क्षण भी विमुक्त (अलग) नहीं रह सकते। रावण को वीर शैव कहा जाता है।

काश्मीरी शैव इस सृष्टि को शिवमय बताते हैं। उनकी दृष्टि से ज्ञानप्राप्ति ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है। ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर संसार और संसार की सभी वस्तुओं का वास्तविक रूप अपने-आप सामने आ जाता है। शंकराचार्य इसी मत को मानते थे।

शैव धर्म में सभी वर्णों को समान अधिकार है। इस मत में शिव या पशुपति को सब देवताओं में श्रेष्ठ माना गया है। 'पशु' अर्थात् 'जीव' का वास्तविक उद्देश्य क्या है और जीव के धर्म-गुण क्या हैं इसका ज्ञान पशुपति की उपासना तथा आराधना से ही प्राप्त किया जा सकता है।

सिख धर्म

गुरु नानक देव सिख धर्म के जन्मदाता संत हुए। उनका जन्म १४६६ ई० को हुआ। बचपन से ही वे उदार और कृपालु थे। देश के प्रति भी उनमें अगाध प्रेम था। उन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा कर सर्वत्र ही ईर्ष्या, द्वेष, वैर, विरोध और धर्म की संकीर्णताओं को दूर करने के लिए अथक यत्न किया। समाज में फैले हुए छुआ-छूत का विरोध कर उन्होंने लोगों को सच्चे धर्म की ओर चलने के लिए प्रेरित किया। धर्मपालन और ईश्वर भक्ति को ही जीवन की मुख्य निधि बताया।

धर्म प्रचार एवं ज्ञानोपदेश के लिए वे भारत के बाहर अनेक देशों में गये। वे मक्का तक पहुँचे और बगदाद, ईरान, कंधार तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काबुल आदि देशों में भी उन्होंने 'सत्तनाम' का उपदेश किया। उनके उपदेशों के मुख्य अंश इस प्रकार हैं :

१—समाज से जाति का बंधन टूट जाना चाहिए।

२—आत्मशुद्धि ही सब कुछ है। इसी आत्मा में ईश्वर का वास है।

३—सच्च बोलना, ज्ञान को मानना, मांस-मदिरा का परित्याग करना, गुरु की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानना और मूर्ति पूजा तथा अवतार पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

४—ईश्वर एक है। उसको धर्म से पाया जा सकता है। धर्म एक ही है।

५—जिसके हृदय में ज्ञान है वही सच्चा हिन्दू है और जिसका जीवन पवित्र है वही सच्चा मुसलमान है।

सिख धर्म के दसवें और अंतिम गुरु का नाम गुरु गोविन्दसिंह था। उन्होंने सिख धर्म को अधिक लोकप्रिय बनाया और उसको मनुष्य मात्र का धर्म कहा।

सिख धर्म के पांच चिन्ह है, जिन्हें 'पंच ककार' कहा जाता है। वे है : १—केश रखना, २—कंघी रखना, ३—कृपाण रखना, ४—कड़ा रखना और ५—कच्छा रखना। प्रत्येक सिख के लिए इन पांच वस्तुओं का रखना अनिवार्य है।

सिख धर्म के धर्मग्रंथ का नाम 'गुरु ग्रंथ साहब' है। उसमें उनके धर्मगुरुओं की वाणियाँ संगृहीत हैं।

आर्य समाज

आर्य समाज के संस्थापक का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती था। उनका जन्म १८८१ ई० को गुजरात में हुआ। बाल ब्रह्मचारी

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

से उन्होंने सीधा संन्यास ले लिया था। उनके गुरु का नाम स्वामी विरजानन्द था, जो प्रज्ञाचक्षु (नेत्रहीन) थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती एक विश्वविख्यात महापुरुष थे। उनका नाम महावीर, बुद्ध और शंकराचार्य जैसे धर्मप्राण एवं विद्वान् महात्माओं में लिया जाता है। अपने इस नये धर्ममत का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने देश के अनेक भागों की यात्रा की। हरिद्वारा जैसे सनातनी पंडितों की नगरी में शास्त्रार्थ करते हुए उन्हें अनेक तरह की शारीरिक यातनायें भी सहनी पड़ीं। तब भी स्वामी जी अपने धर्म एवं विचारों को प्रचार करने में अडिग बने रहे।

उन्होंने इस युग के लिए सर्व प्रथम एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। उनका यह आदर्श था हिन्दी प्रेम। अपने सभी कार्यों के लिए उन्होंने आर्यभाषा हिन्दी का व्यवहार किया। अपने गंभीर एवं वृहद् ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को उन्होंने हिन्दी में ही लिखा।

उनके आर्य समाज का आधार वेद है। उन्होंने 'ऋग्भाष्यभूमिका' नामक अपने ग्रंथ में यह सिद्ध किया कि वेद अपौरुषेय है, और वैदिक धर्म ही मानवता का मूल धर्म है। उन्होंने हिन्दू संस्कृति तथा धर्म की रक्षा के लिए सबसे बड़ा कार्य किया। अपने इस नये धर्म में उन्होंने ईसाई एवं मुसलमान बने हिन्दुओं के लिए ऐसी व्यवस्था की कि वे पुनः हिन्दू समाज में शामिल हो सकते हैं। उनके इस नये धर्म माग पर चलकर हिन्दू जाति का उत्थान हुआ।

आर्य समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों को और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रमों को जन्म के अनुसार नहीं, कर्म के अनुसार माना जाता है। वहां कोई भी अछूत नहीं है। सभी को वेद पढ़ने का अधिकार है। आर्य समाज में मूर्तिपूजा को नहीं माना जाता है। सत्य, ज्ञान, न्याय, प्रेम, दया, सत्कार, स्नेह, संतोष, परोपकार, अनाथों की सेवा, विधवाओं की सहायता और एकमात्र हिन्दी भाषा का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवहार, आर्य समाज के ये मुख्य आधार हैं। शिक्षा की दिशा में आर्य समाज की मुख्य देन है।

ब्रह्म समाज

ब्रह्म समाज की स्थापना राजा राममोहन राय ने की थी। इनका जन्म १७७४ ई० को हुगली जिले के राधानगर नामक गांव में हुआ। ब्रह्म समाज के नाम से उन्होंने एक ऐसे धर्म की स्थापना की, जिसके अनुसार किसी नबी, पैगम्बर, देवदूत, आचार्य या पुरोहित को माध्यम बनाये बिना व्यक्तिगत साधना या आत्मचिन्तन के द्वारा ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है।

ब्रह्म समाज वस्तुतः, विश्व के समस्त धर्मों का समन्वित धर्म है। वेद, बाइबिल, कुरान और अवेस्ता आदि धर्मग्रंथों की कल्याणकारी नीतियों का चयन कर इस नये धर्म का निर्माण किया गया है। यही कारण है कि क्या हिन्दू, क्या ईसाई, क्या मुसलमान और क्या फारसी, सभी धर्मों के अनुयायियों ने ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों का आदर किया। राय बाबू ने इस नये धर्म के द्वारा भारतीय संस्कृति के उदार स्वरूप की व्याख्या की। हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू जनता पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा। वह उन पढ़े-लिखे लोगों का धर्म बन गया, जो हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू धर्म का परित्याग किये बिना खान-पान, रहन-सहन आदि के सामाजिक बंधनों से मुक्त रह सकते थे।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और स्वतंत्र विचारों के समर्थक श्री केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज, के मुख्य उन्नायकों में से थे। इन धर्म नेताओं के कारण एक ओर तो हिन्दू संस्कृति एवं आचार-विचारों में जो संकीर्णता आ गयी थी उसके दूर होने में सहायता मिली और दूसरी ओर हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के प्रति मानव समाज की आस्था बढ़ती गयी। इन सुधारों के अतिरिक्त जात-पाँच तथा सजातीय विवाहों की संकीर्णताओं को दूर करने में भी ब्रह्म समाज का उल्लेखनीय योग रहा है।

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने की थी। स्वामी बिवेकानन्द बड़े तेजस्वी और प्रतिभासंपन्न महापुरुष थे। उनका नाम सारा विश्व जानता है। उनके द्वारा संस्थापित रामकृष्ण मिशन की शाखायें आज भी अमेरिका, इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, लंका, बर्मा आदि यूरोप तथा एशिया के अनेक देशों में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर रही हैं। स्वामी विवेकानन्द के गुरु का नाम था स्वामी रामकृष्ण। उन्हीं के नाम पर इस मिशन का नामकरण हुआ।

स्वामी रामकृष्ण का जन्म हुगली जिले के कामारपुर नामक गांव में हुआ था। बाल्यकाल से ही वे ईश्वर भक्त थे। अक्सर वे किसी साधु को देखकर या किसी सत्संग में धार्मिक चर्चाओं को सुनकर यह सोचा करते थे कि इस इतने बड़े संसार को चलाने वाली शक्ति कौन है। वे सदा ही आनन्ददायिनी जगन्माता के चिन्तन में एकाग्र रहा करते थे। ऐसे अवसरों पर उनकी भूख-प्यास सब जाती रहती थी।

आत्म-चिन्तन के द्वारा उन्होंने सबसे पहली बात खोज निकाली सच्चरित्र एवं सदाचार की। उन्होंने कहा है कि सच्चरित्र एवं सदाचार से ही आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने 'चरित्र कमल को विकसित होने' पर बड़ा बल दिया है।

स्वामी जी का धर्म मनुष्यमात्र को दृष्टि में रखकर निश्चत किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया मनुष्यमात्र का धर्म है। वे सभी धर्मों तथा मनुष्यों का हृदय से आदर करते थे। स्वामी जी के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने उनकी जीवनी में लिखा है 'मै वर्षों उनके समीप रहा; किन्तु उनके मुख से मैंने किसी के भी धर्मग्रंथ की बुराई नहीं सुनी। सभी के धर्मग्रंथों पर उनकी समानरूप से श्रद्धा थी।' उन्होंने प्राणी-प्राणी में भलाई और प्रभु का दर्शन किया। अपनी आयु के आधे भाग में उन्होंने ज्ञान का अर्जन किया और आधा भाग उसको वितरण करने में लगाया।

उनके आदर्शों को चमकाया स्वामी विवेकानन्द ने। स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता के पास १८६२ ई० को हुआ था। अपनी छात्रावस्था में ही वे भारतीय तथा विदेशी विद्वानों की पुस्तकें पढ़ चुके थे। उनका अध्ययन-विषय था अध्यात्म। उन्होंने वेदान्त का गहरा अध्ययन किया और अपने देश तथा अमेरिका, इंगलैण्ड आदि बाहरी देशों में जाकर वेदान्त के महत्व पर सारगर्भित भाषण दिये। उनके भाषण इतने प्रभावशाली होते थे कि लोग हजारों की संख्या में उनको सुनने के लिए एकत्रित होते थे। इसीलिए विदेशों में अनेक लोग उनके शिष्य बन गये।

स्वामी जी का मुख्य धर्म था पीड़ितों की सहायता करना। वे कहा करते थे 'सभी उपासनाओं का पवित्र उद्देश्य यही है कि स्वयं पवित्र रहकर दूसरों की भलाई में लगे रहना। दीन-दुःखियों में ही शिवरूप का दर्शन किया जा सकता है।'

वेद उनके विचारों का आधार था। उसी के भीतर उन्होंने वेदान्त को देखा। संसार के सभी धर्मों में उनकी समानरूप से निष्ठा थी। उनके मत से समस्त मानव जाति का एक ही धर्म है। वह अनादि है। अतः सभी धर्मों के मनुष्यों से प्रेम होना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामी जी का कर्म पर विश्वास था, कर्मफल को वे गौण मानते थे। उनका कहना था कि बराबर आगे बढ़ते जाओ। कर्म में अधिकार रखो, कर्मफल में नहीं। उनका सिद्धान्त था 'मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का आप निर्माता है।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारी धर्म

नारी के विभिन्न नामरूपों का आशय

हमारे समस्त धर्मग्रंथों एवं अन्य विषय के ग्रंथों में नारी धर्म की बड़ी महिमा गायी गयी है। नारी के विभिन्न नामरूपों में ही उसके धर्म का रहस्य छिपा है। उसका अबला, वामा, ललना, महिला, जाया और माता आदि अनेक रूपों तथा नामों से हमारे ग्रंथों में उल्लेख हुआ है। उसके ये नामरूप ही उसके कर्तव्यों एवं गुणों का स्वयंमेव परिचय देते हैं।

नारी

उसको 'नारी' इसलिए कहा गया कि वह वीरता का कार्य करने वाली, दान देने वाली, नेतृत्व करने वाली या मनुष्यों का उपकार करने वाली है।

मेना

उसको 'मेना' इसलिए कहा गया कि पुरुष उसका आदर करते हैं। मेना = माना और = मान्या। मेना था माता पार्वती का नाम।

स्त्री

'स्त्री' उसको इसलिए कहा गया कि उसमें लज्जा-शील होता है अथवा वह गर्भ को धारण करती है।

योषा

पुरुष की सहयोगिनी एवं सहभागिनी होने के कारण उसको 'योषा' कहा गया।

वामा

'वामा' उसका नाम इसलिए पड़ा कि वह सौन्दर्य को बिखेरने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली होती है; अथवा प्रत्येक 'हाँ' के बदले 'नहीं' कहने वाली होती है।

अबला

'अबला' उसको इसलिए कहा गया कि उसमें पुरुष का-सा बल नहीं होता। किन्तु उसके चातुर्य और तेज की कथायें उसके शौर्य का ही बखान करती हैं।

सुन्दरी

'सुन्दरी' उसको इसलिए कहा गया कि उसको देखते ही पुरुष का मन गीला हो जाता है; अर्थात् वह प्रेम के कारण पिघल पड़ता है। या शोभाशाली अथवा अच्छी तरह प्रसन्न करने वाली होने के कारण उसको 'सुन्दरी' कहा गया।

प्रमदा

वह हर्षित (खुशमिज़ाज़) स्वाभाव की होने के कारण 'प्रमदा' नाम से भी कही जाती है।

ललना

उसमें लालसा, इच्छा या चाह की प्रबलता होती है। इसलिए उसको 'ललना' कहा गया है।

मानिनी

वह छोट-छोटी बातों में रूठ जाने वाली होती है। इसलिए उसको 'मानिनी' या स्वाभिमानिनी कहा जाता है।

महिला

पूज्य (मह) होने के कारण उसको 'महिला' कहा जाता है।

दुहिता

'दुहिता' उसको इसलिए कहा गया कि जहां-कहीं भी उसको दिया जाता है (विवाह के बाद), वहीं उसको दुत्कारा जाता है। अथवा उसके दूर होने पर ही पिता को चैन मिलता है; या वह पिता को, हर समय, अनेक मांगों को पूरी करने के लिए दुहा करती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाया

'जाया' उसको इसलिए कहा जाता है कि पुरुष स्वयं उसमें पुत्र रूप में जन्म लेता है। 'जाया' नाम पत्नी का है।

माता

'माता' उसको इसलिए कहा जाता है कि वह आदरणीया होती है; वह निर्माण (जन्म) करने वाली जननी है। गुरु से बढ़कर और स्वर्ग से ऊँची होने के कारण भी उसको 'माता' कहा जाता है।

वैदिक युग में नारी का स्थान

हमारे दर्शनों में प्रकृति और पुरुष या माया और ब्रह्म के सहयोग से संसार की उत्पत्ति बतायी गयी है। यदि पुरुष को प्रकृति और ब्रह्म को माया न मिली होती तो यह संसार ही न होता। यह सारी सृष्टिरचना प्रकृति या माया के ही कारण है।

यह प्रकृति या माया, नारी के ही रूप प्रतीक हैं। हमारे वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र नारी के महत्त्व एवं गौरव का गुणगान किया गया है। हमारे वेदों में वैदिक युग की नारी के तीन कर्तव्य बताये गये हैं :

१—मीठा और सच बोलना, दूसरों को भी वैसा ही बोलने के लिए प्रेरित करना।

२—अपने पति तथा अन्य लोगों को उत्तम सलाह देना (सुमतीनां चेतयन्ती)।

३—यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना।

इसी कारण वैदिक युग की नारियों को दिव्य गुणों वाली कहा गया है। पुरुषों ने उनकी सरस्वती रूप में पूजा की है। उस समय प्रत्येक शुभकार्य पर विदुषी (लिखी-पढ़ी) स्त्रियों को बुलाया जाता था। जितने भी उत्तम कार्य होते थे उनमें विदुषी नारियों से सलाह ली जाती थी।

इस प्रकार वैदिक युग में नारी, पुरुष को प्रेरणा देने वाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(चोदयित्री), विदुषी (सरस्वती) और उत्तम ज्ञान या सलाह (वार्य) देने (दात्) वाली थी। वह पूज्यनीय थी, वन्दनीय थी। उसको इच्छाओं की पूर्ति करने वाली, प्रसन्न करने वाली, घर की ज्योति, शक्तिशालिनी और उदार माना जाता था। वह विद्वानों की माता थी और शुभकार्यों में उपदेश देने वाली ब्रह्मज्ञानी भी।

वह पति की अनुव्रता थी; अर्थात् उत्तम मन, उत्तम संतान और उत्तम भाग्य के साथ पति को, अनुकूल शुभकार्यों में उसकी सहभागिनी बनकर मोक्ष देने वाली भी थी। गृहस्थ जीवन में रहकर उसका कर्तव्य या धर्म था कि वह पति, सास, ससुर तथा सारे परिवार को सुखी रखकर सभी प्रकार से कल्याण करने वाली हो।

प्रत्येक शुभ कार्य में पति के लिए पत्नी का साथ रखना आवश्यक था। वह पुरुष का आधा शरीर (अर्धांगिनी) थी। मित्र थी। अतः प्रत्येक शुभ कार्य तभी सफल समझा जाता था, जब उसको करने के लिए पत्नी की स्वीकृति एवं सहयोग प्राप्त हो। भगवान् राम ने इसी लिए, अपने कुलगुरु वशिष्ठ की आज्ञा से, माता सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर तब यज्ञ किया था।

परिवार की सर्वस्व होने के अतिरिक्त सारे समाज और सारी मानवता के प्रति भी उनकी जिम्मेदारी थी। इसलिए वे समस्त प्रजा (विश) की उन्नति (पुष्टि) करने वाली और सुख (स्योना) देने वाली भी थी।

इस प्रकार की वैदिक युग की नारियों में पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, देवी, अदिति, शची, कात्यायनी, शतरूपा, देवहूति, संध्या, अरुंधती, अपाला, सूर्या, गार्गी, मैत्रेयी, सावित्री, लोपामुद्रा, अनुसूया, शाण्डिली और मदालसा आदि वंदनीय नारियों का नाम लिया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गार्गी

गार्गी जैसी देववरदा एवं ऋषिवंदनीया विदुषी का नाम हमारे लिए पूजा की वस्तु है। उसका एक नाम वाचक्नी भी था; क्योंकि उसके पिता का नाम वचक्नु था। गार्गी उसका नाम, उसके गर्ग गोत्र में पैदा होने के कारण रखा गया।

'गार्गी और याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ' इस विषय को हमारे उपनिषत्कार ऋषियों ने एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में इस आदर्श का आख्यान इस प्रकार किया गया है :

एक बार राजा जनक ने बहुत बड़ा यज्ञ किया। राजा जनक का ब्रह्मज्ञान भी प्रसिद्ध है। उन्होंने देश के समस्त अंचलों से छँटे हुए ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों को यज्ञ में आमंत्रित किया। उस समय यज्ञों के विधान का एक बड़ा कारण यह भी था कि ऐसे अवसरों पर धार्मिक अभ्युन्नति के अतिरिक्त ज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर भी एक साथ बैठकर समय-समय पर विचार होता रहे।

एक-से-एक बढ़े-चढ़े विद्वानों के एकत्र हो जाने पर राजा जनक ने विद्वानों को ललकारा 'गोशाला में बंधी इन हजार गायों और उनमें प्रत्येक के सींगों पर ठुसे हुये इस दस-दस पाद सुवर्ण को वह विद्वान् ले जाय, आप लोगों में जो सर्वश्रेष्ठ तात्त्विक है।' ऐसा विचित्र प्रश्न सुनकर किसी विद्वान् को गायें ले जाने का साहस न हुआ। जो विद्वान् गायों को ले जाना अपना अपमान समझते थे वे भी ब्रह्मज्ञान की बात सुनकर दहल गये। किन्तु अपने ब्रह्मवेत्तापन का पूरा विश्वास न होने के कारण कोई भी चुनौती को स्वीकार न कर सका। इस निस्तब्धता को देखकर याज्ञवल्क्य आगे आये और उन्होंने अपने एक सामवेद का अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी शिष्य को आदेश दिया 'सौम्य, तू इन गायों को हांक ले चल।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण विद्वान् एकदम बौखला उठे। जनकराज का होता अश्वल, याज्ञवल्क्य से चटपट पूछ बैठा 'क्यों, क्या तुम्हीं हम सब में श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हो ?' याज्ञवल्क्य ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया 'नहीं ! ब्रह्मवेत्ता तो हमारे वन्दनीय हैं। हमें तो केवल गायों की आवश्यकता है। अतः ले जा रहे हैं।'

याज्ञवल्क्य की बात ठीक लक्ष्य पर गयी। दोनों का शास्त्रार्थ छिड़ गया। अश्वल का प्रचण्ड पांडित्य याज्ञवल्य की शांत एवं गंभीर वाणी के आगे घुल गया। उनके बाद भी अनेक विद्वानों ने याज्ञवल्क्य के आगे गंभीर समस्यायें रखी; किन्तु याज्ञवल्क्य ने सबको निरुत्तर कर दिया।

जब सभी विद्वान् चुप हो गये तो गार्गी उठी। उसने नम्रता से प्रश्न किया 'भगवन्, यह जो कुछ भी पार्थिव पदार्थ है वह सब जल में ओतःप्रोत है; किन्तु जल किस में ओतःप्रोत है ?'

'जल, वायु में ओतःप्रोत है' याज्ञवल्क्य ने चट से उत्तर दिया।

इस प्रकार क्रमशः वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, गन्धर्वलोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक, देवलोक, इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक के संबंध में प्रश्नोत्तर होने के बाद गार्गी ने पूछा 'और यह ब्रह्मलोक किस में ओतःप्रोत है भगवन् ?'

वैसे ही स्वाभाविक ढंग से उत्तर दिया याज्ञवल्क्य ने 'यह तो अति प्रश्न है गार्गी। यह उत्तर की सीमा है। इसके आगे प्रश्न हो ही नहीं सकता। अब तू प्रश्न न कर। नहीं तो तेरा मस्तक गिर जायगा।'

विदुषी गार्गी ने महाज्ञानी याज्ञवल्क्य का संकेत समझ लिया। वह चुप हो गयी।

फिर दो एक विद्वानों के प्रश्न करने के बाद गार्गी उठी। उसने दो प्रश्न सामने रखे। उनका भी याज्ञवल्क्य ने संतोषजनक उत्तर दिया। गार्गी ने भी याज्ञवल्क्य का पांडित्य स्वीकार कर लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गार्गी ने ही सब ब्राह्मणों को राय दी कि याज्ञवल्क्य से अधिक प्रश्न करना व्यर्थ है। वे सर्वज्ञ हैं और उन्हें ही हम सब में श्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है।

यद्यपि गार्गी ने याज्ञवल्क्य का पांडित्य शिरोधार्य कर लिया था, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें पांडित्य की कमी थी। अक्षरतत्त्व के संबंध में उसके द्वारा किये गये प्रश्नों से उसके असामान्य ज्ञानार्जन का परिचय मिलता है।

उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में जहां-जहां गार्गी की चर्चा की गयी है वहां-वहां उसके वैदूष्य को सराहा गया है।

आदर्श पतिव्रता नारी के आचरण

माता लोपामुद्रा, महर्षि अगस्त्य की पत्नी थीं। पतिव्रता धर्म, संयम, तपस्या, आदर्श और त्याग के लिए संसार में माता लोपामुद्रा का चरित्र बड़े पूजाभाव से आज भी याद किया जाता है।

देवगुरु बृहस्पति ने लोपामुद्रा के पुनीत चरित्र का बड़ी श्रद्धा से वर्णन किया है। यह वर्णन भारत की प्रत्येक आदर्श पतिव्रता नारी के लिए अनुकरणीय है। इस कथा को पुराणों में इस प्रकार कहा गया है :

'स्कन्दपुराण' की कथा के अनुसार बृहस्पति ने कहा—'मुने, तुम्हारी सहधर्मिणी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं। इनकी चर्चा भी पुण्य देने वाली है।' अरुन्धती, सावित्री, अनुसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, मेना, सुनीति, संज्ञा और स्वाहा—इन देवियों के द्वारा, समस्त पतिव्रता नारियों में, लोपामुद्रा का स्थान सबसे बड़ा बताया गया है।

'आप जब भोजन करते हैं तभी वह भी भोजन करती हैं। आपके खड़े होने पर खड़ी होती हैं, सो जाने पर सोती है और आपके उठने से पहले ही उठ जाती हैं। आपके सामने वह सदा ही स्वच्छ वस्त्रों में रहती हैं। आपकी दीर्घायु हो, इसलिए कभी भी आपका नाम नहीं लेतीं। आपकी कड़ी बातों का कोई उत्तर नहीं देतीं। आपके दण्ड देने पर प्रसन्न होती हैं। आपके यह कहने पर कि 'देवि, यह कार्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करो' तत्काल ही उत्तर देती हैं कि 'नाथ, इस कार्य को तो पूरा हुआ ही समझिये, मैं अभी किये देती हूँ।'

'वह कभी भी घर के द्वारा पर देर तक खड़ी नहीं होतीं, न तो कभी दरवाजे पर बैठती हैं। आपके बिना कहे ही आपकी आवश्यकता की वस्तुएँ, जैसे पूजन सामग्री, जल, कुशा, पत्र, पुष्प अक्षत आदि लाकर रख देती हैं। वह समय के अनुसार प्रत्येक कार्य को करती हैं।'

'स्वामी के भोजन से बचे हुए अन्न को ही वह खाती है। पति का दिया हुआ ही उनके लिए सब कुछ है। स्वयं वह तब खाती है, जब देवता, पितर, अतिथि, भृत्य और गाय को खिला लेती है। प्रतिदिन भिक्षुक को अन्नदान किये बिना वह अन्न ग्रहण नहीं करती है।'

'आपकी आज्ञा लिए बिना कोई व्रत, उपवास नहीं रखती हैं और तीर्थों को नहीं करतीं। आप जब सोते या आराम करते रहते हैं तब वह विघ्न नहीं डालतीं।'

'पति की दीर्घायु कामना के लिए वह हरिद्रा चूर्ण, कुंकुम, सिन्दूर, काजल, अंगिया, पान, शुभ आभूषण, केश संवारना, चोटी बांधना, कंगन और कान का आभूषण—इन्हें सदा अपने शरीर पर रखती हैं। धोबिन, बुरी बातों को बोलने वाली और दुराचारिणी स्त्रियों से वह अलग रहती है।'

'ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँती, और देहली पर वह कभी नहीं बैठती हैं। पति की रुचि में रुचि और अरुचि में अरुचि रखतीं हैं। पति की आज्ञा का पालन ही उनका व्रत और धर्म है।'

इसके बाद की कथा में सदाचरणशीला नारियों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि :

पति ही स्त्री का सर्वस्व है। रोगी, वृद्ध, सुखी, दुःखी वह जैसा भी हो, नारी उसका त्याग न करे। नारी के लिए पति ही एकमात्र जीवन है। वह शिव तथा विष्णु से भी बढ़कर है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों का यह परम कर्तव्य है कि वह पति के चरणों की पूजा कर तब भोजन करें। ऊँचे आसन पर न बैठें। लज्जा प्रकट करने वाली बात न बोलें।

पति ही स्त्री का गुरु, धर्म, तीर्थ, व्रत, पुण्य, देवता आदि सब कुछ है। पति के साथ आजीवन सहचरी बनी रहना ही पत्नी का कर्तव्य है। स्त्री सदा ही पति का वैसे ही अनुसरण करे, जैसे छाया शरीर का, चाँदनी चंद्रमा का और बिजली मेघ का अनुसरण करती है।

सती नारी, यमदूतों के चंगुल में पड़े हुए पति का बलपूर्वक उद्धार करके उसको स्वर्ग पहुँचा देती है। पतिव्रता के तेज के आगे सूर्य का तेज और अग्नि की ज्वाला भी मन्द पड़ जाती है। शरीर में जितने रोयें हैं, उतने करोड़ आयु वर्षों तक पतिव्रता स्त्री पति के साथ रह कर स्वर्ग के सुख का उपभोग करती है।

पतिव्रता स्त्री से सब कुछ पवित्र होता है।

नारी के कर्तव्य

कन्या

गृहस्थधर्म में कन्या का संबंध बड़ा ही आत्मीयता का होता है। वह पिता के लिए उत्तम कल्याण को देने वाली भी है। धर्मशास्त्र में कहा गया है कि गृहस्थधर्म की सिद्धि के लिए पिता को कन्यादान करना आवश्यक है। कन्यादान करने से बड़ा पुण्य होता है और स्वर्ग में पितरों को उसका फल मिलता है।

जब तक कन्या का विवाह नहीं हो जाता जब तक उसको माता, पिता तथा भाइयों के संरक्षण में रहना चाहिए। धर्मशास्त्र में भी यही बताया गया है कि बाल्यकाल में कन्या की देख-रेख पिता करे, युवावस्था में वह अपने पति के संरक्षण में रहे और वृद्धावस्था में उसकी सेवा-सुश्रुषा उसके पुत्रादि करें।

माता-पिता को चाहिए कि अपनी कन्या को वे सीता, सावित्री,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गार्गी, दमयन्ती, लोपामुद्रा आदि नारियों की कथायें सुनाकर पतिव्रता धर्म की, ज्ञान प्राप्त करने की और लोक में श्रेष्ठ होने की शिक्षा देते रहें। घर की पवित्रता और शुद्धि से स्त्री किस प्रकार घर की लक्ष्मी और देवी बन सकती है, इसका भी उपदेश माता पिता ही दें।

गृहिणी

कन्या से वह, विवाह होने के बाद गृहिणी (परिवारवाली) बन जाती है। चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ माना गया है। इस गृहस्थ आश्रम की सफलता का श्रेय तथा कल्याण नारी पर ही निर्भर है।

गृहिणी हो जाने के बाद नारी को चाहिए कि वह पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए परिवार की सुख-शांति के लिए हर तरह से चेष्टा करे। गृहिणी का पहला कर्तव्य है पतिसेवा। हमारे धर्मशास्त्र में कहा गया है कि पति चाहे जैसा हो, पत्नी को मन, वचन और कर्म से उसकी सेवा करनी चाहिए। पतिव्रता के लिए पति की सेवा से बढ़कर यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कोई भी कर्म नहीं है। ये सभी सत्कार्य पतिसेवा के बाद ही सफल हो सकते हैं। जो-जो फल यज्ञ, उपवास तथा व्रत आदि करने से प्राप्त होते हैं, वे नारी को पतिसेवा से ही सुलभ हो जाते हैं। यह पतिव्रता धर्म नारी के लिए एक तप है। नारी का यह तपोबल योगी, साधक, सिद्ध या तपस्वी के तपोबल से कम नहीं है। इसी तपोबल के कारण नारी ने सूर्य का उदय होना तक रोक दिया था।

गृहस्थ जीवन में रहकर नारी को क्या-क्या करना चाहिए, इसका विधान धर्मशास्त्र में विस्तार से बताया गया है। उसी का निष्कर्ष महाकवि कालिदास ने अपने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नामक नाटक में कहा है। शकुन्तला जब अपने पतिगृह के लिए बिदा लेती है तब महर्षि कण्व उसको समझाते हैं :

'वत्से, पतिघर पहुँचने पर तुम वहाँ के सभी बड़े-बूढ़ों की सेवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना। अपनी सौतों से सखियों जैसा व्यवहार करना। पति निरादर भी करें तो क्रोध करके उनसे झगड़ा न कर बैठना। अपने नौकरचाकरों को बड़े प्यार से रखना। अपने सौभाग्य पर अधिक गरूर न करना। जो नारियाँ घर में इस प्रकार का व्यवहार करती हैं वे ही सच्ची गृहणियाँ हैं। इसके विपरीत चलने वाली स्त्रियाँ तो कुलनाशिनी होती हैं।'

आर्य कन्या का आदर्श : परिवार सेवा

मद्रदेश के एक राजा थे। उनका नाम था अश्वपति। उनकी एक पुत्री हुई, जिसका नाम था सावित्री। सावित्री जब विवाह योग्य हुई तो राजा ने उसे यह स्वतंत्रता दे दी कि वह अपनी ही इच्छा के अनुसार अपना पति चुन ले। राजा ने अपनी कन्या के साथ अपने मंत्री को वर तलाश करने के लिए भेज दिया।

सावित्री ने उपयुक्त पति की खोज में अनेक नगरों का भ्रमण किया। अन्त में वह शाल्वदेश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के पास पहुँची। उस समय नेत्रहीन राजा द्युमत्सेन अपने पुत्र तथा अपनी स्त्री को लेकर जंगल में तपस्वी का जीवन बिता रहे थे। उनका सारा राजपाट शत्रुओं ने ले लिया था।

सावित्री की मुलाकात जब सत्यवान से हुई तो उसने पूरा निश्चय कर लिया कि सत्यवान ही उसका पति बनने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। वह मंत्री के साथ अपने पिता के पास चली आयी।

सावित्री के लौट आने पर संयोगवश नारद जी अश्वपति के यहाँ उपस्थित हुए। नारद को राजा अश्वपति ने अपनी पुत्री का निर्णय सुनाया। इस पर नारद जी ने कहा 'निश्चय ही सत्यवान सद्गुणी और धर्मात्मा है। वह बुद्धिमान्, शूर, क्षमाशील और तेजस्वी भी है। किन्तु है अल्पायु। आज से ठीक एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।'

यह सुनकर राजा को बड़ी निराशा हुई। उसने सावित्री से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसका निश्चय बदलने के लिए आग्रह किया। किन्तु सावित्री ने नम्रता से अपने पिता को उत्तर दिया :

'पिता जी, एक बार मन से मैंने जिनका वरण कर लिया है, वे ही मेरे पति हैं। चाहे कुछ भी हो, मै अब किसी दूसरे का वरण नहीं कर सकती। कन्या का दान एक बार दिया जाता है और आर्य कन्या एक बार ही पति का वरण करती है।'

अंत में दोनों का विवाह हुआ। विवाह के बाद सावित्री ने अपने बहुमूल्य वस्त्रों और कीमती गहनों को उतार दिया। इस पर उसकी सास ने कहा 'बेटी तुम तो राजकन्या हो! अपने पिता के दिये हुए वस्त्राभूषणों को पहने रखो।'

सावित्री ने सास से विनम्र वाणी में कहा 'मै आपके पुत्र की सेविका हूँ। आप तथा मेरे पूज्य श्वशुर एवं मेरे स्वामी जैसे रह रहे हैं वैसे ही मै भी रहूँगी। उससे अधिक सुख मेरे लिए त्याज्य है। मैं आपसे बढ़कर वस्त्र तथा आभूषण कैसे पहन सकती हूँ? मेरे लिए सच्चे वस्त्राभूषण तो आप लोगों की सेवा है।'

इस निश्चय के अनुसार सावित्री भी वल्कल वस्त्र पहन कर मुनि पत्नियों की तरह जंगल में रहने लगी। वह अपने शील, सदाचार, इन्द्रिय संयम, मधुरवाणी और सेवा परायणता के कारण सबके संमान की भाजन हो गयी।

आज भी सावित्री के पतिव्रता धर्म की कथा बड़ी श्रद्धा से सुनी जाती है और उसको सुनने से पुण्य की प्राप्ति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमुख व्रत और त्योहार

निर्जला एकादशी

निर्जला एकादशी के व्रत को पुराणों में बड़ा फलदायी बताया गया है। वैसे तो प्रत्येक पक्ष की एकादशी को मिला कर वर्ष में चौबीस एकादशियाँ होती हैं और यद्यपि इन सब में व्रत रखने का विधान किया गया हैं; किन्तु उनमें ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। उस पर व्रत रखने से वर्ष भर की सभी एकादशियों के व्रत का फल मिल जाता है।

इस तिथि को एकादशी के सूर्योदय से लेकर द्वादशी के सूर्योदय तक—पूरे चौबीस घण्टे—जल को ग्रहण नहीं करना चाहिए। इस व्रत को इसीलिए एक साधना बताया गया है। ज्येष्ठ मास की प्रचण्ड गर्मियों में प्यास अधिक लगती है। किन्तु ऐसी स्थिति में बिना पानी पिये रहना भी एक महान् कृत्य माना जाता है।

व्यासदेव से विशेष प्रार्थना करने पर महाबली भीम ने इस व्रत को अपने लिए नियत कराया था। उसके फल के संबंध में व्यास जी ने भीम से कहा है "इस एक व्रत को धारण करने से तुम्हें पूरे वर्ष की एकादशियों के फल की उपलब्धि होगी।" इसी कारण इस एकादशी को 'भीमसेनी एकादशी' भी कहते हैं।

इस दिन व्रत रहने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्णयुक्त जल से परिपूर्ण घट या कलश दान करना चाहिए। उससे सब अरिष्ट दूर हो जाते हैं।

वटसावित्री व्रत

वटसावित्री का व्रत ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी की तिथि को नियत है। प्रत्येक सौभाग्यवती स्त्री को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्रत को संपन्न करने के लिए यह विधान बताया गया है कि व्रत रहने वाली स्त्री को प्रातः काल उठकर तिल तथा आँवले के मिश्रण से केशों को शुद्ध करने के उपरान्त स्नान करना चाहिए। तदनन्तर पवित्र अन्तःकरण से वट की जड़ों पर पानी का अर्घ्य देते हुए वह पुत्र-पति की आरोग्यता और अपने सौभाग्य के लिए प्रार्थना करे।

जल चढ़ाने के बाद वह वट पर गंध, पुष्प, अक्षत चढ़ायें और उस पर सूत का डोरा बांधने के बाद धूप से उसकी आरती उतारे। अन्त में वट की परिक्रमा और सावित्री को नमस्कार करके वह घर आये और अपने घर की भीत पर चन्दन या हल्दी से 'वट का वृक्ष' लिखे। उसका वह पूर्णिमा या आमावस्या तक अर्चन-पूजन करती रहे।

हमारे पुराणग्रंथों में महासती सावित्री के उज्वल चरित्र का वर्णन देखने को मिलता है। इस व्रत के साथ सावित्री का योग जोड़ने का यह आशय है कि इस व्रत का अनुष्ठान करने वाली स्त्री का सतीत्व और पातिव्रत्य बढ़ता है। ऐसी सतियों और पतिव्रताओं के आगे मृत्यु भी हार मान लेती है।

सावित्री की कथा में स्त्री धर्म का सर्वोच्च आदर्श देखने को मिलता है। अविवाहित कन्याओं को भी यह व्रत रखना चाहिए और उस दिन सावित्री के आदर्श चरित्र का स्मरण-मनन करते हुए उसको अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिए।

हरतालिका या तीज

श्रावण मास के शुक्लपक्ष की तृतीता तिथि को हरतालिका या तीज का व्रत कहा जाता है। स्त्रियों के लिए इस व्रत के अनुष्ठान का विशेष विधान है।

इस व्रत के फल को पुराणों की कथाओं में बताते हुए लिखा गया है कि एक बार पार्वती जी की सखियों द्वारा पार्वती जी का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपहरण हुआ था। बात ऐसी है कि नारद जी के परामर्श से एक दिन जब नगराज हिमालय ने भगवान् विष्णु से पार्वती जी का विवाह करना निश्चित किया तो पार्वती जी की अनिच्छा के कारण उनकी सखियाँ उन्हें ऐसी जगह भगाकर ले गयीं, जहाँ कोई न देख सके। वहाँ एक गुफा में भूखी-प्यासी रहकर पार्वती ने अपने गद्गद् अन्तःकरण से अपने आराध्य शिव को स्मरण किया तो वे तत्काल ही वहाँ प्रकट हो गये। शंकर भगवान् पार्वती जी की सभी कामनाओं को सहर्ष स्वीकार कर कैलाश की ओर लौट आये। जिस दिन पार्वती जी ने शंकर भगवान् के दर्शन कर अपनी संपूर्ण कामनाओं को पूरा किया उस दिन श्रावण शुक्ला तृतोया थी।

इसलिए इस तीज को प्रत्येक स्त्री व्रत रहती है। उस दिन केले के खंभों से सज्जित एक मण्डप बनाया जाता है, जिसमें शंकर-पार्वती की बालू निर्मित मूर्ति की स्थापना की जाती है। तदनन्तर उनका पूजन होता है।

इस व्रत को करने से स्त्री को चिर सौभाग्य प्राप्त होता है।

नाग पंचमी

श्रावण मास की शुक्ला पंचमी को नाग पंचमी कहा जाता है। ऐसा नाम उसका इसलिए पड़ा कि उस दिन नागों की पूजा की जाती है; क्योंकि ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से पंचमी तिथि के स्वामी नाग हैं। नागों की पूजा करने का विधान बताते हुए कहा गया है कि इस तिथि को यदि हो सके तो सोने-चाँदी के नाग बनाकर उनकी पूजा की जानी चाहिए; नहीं तो लकड़ी या मिट्टी अथवा घर के दरवाजे के दोनों ओर गोबर से पाँच नागों का चित्र अंकित करना चाहिए। उसके बाद उनका जल, दूध और घी से स्नान करा कर फिर अक्षत, रोली, धूप, दीप तथा नैवेद्य से उनकी पूजा करनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए। गेहूँ, दूब, धान की खील, दही और दूध से नागों की विशिष्ट पूजा का विधान बताया गया है। दूध, सुगन्धित पुष्प और धूप नागों को विशेष प्रिय है।

यह व्रत वस्तुतः कृषिजीवी लोगों के लिए विशेष रूप से निश्चित हैं; क्योंकि धरती, जिस पर कृषक का जीवन निर्भर है, भूमिगर्भ होने से सर्प की भी वह माता है। सर्प को, क्योंकि संप्रति और विपत्ति दोनों का अधिष्ठाता बताया गया है, अतः वह प्रसन्न रहे और कृषक का निरन्तर कल्याण करता जाय, इसलिए कृषक उनकी पूजा करते हैं।

ऐसा बताया गया है कि नाग पंचमी के दिन, ब्राह्मण को स्वर्ण तथा गाय का दान करने, या चाँदी अथवा सोने से बने सर्प को पान के पत्ते पर दान करने से सातकुलों तक साँप का कोई भय नहीं रहता। इस तिथि को पृथिवी नहीं खोदनी चाहिए।

अनन्त चतुर्दशी

भाद्रपद की शुक्ला चतुर्दशी को इस व्रत के अनुष्ठान का विधान है। जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है कि इस व्रत को अनन्त भगवान् की पूजा होती है। नदी तट पर पूजा करने का विशेष विधान है।

प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर दूर्वा को हल्दिया रंग के सूत से चौदह बार गाँठ दिया जाता है। इन चौदह गाठों में कृष्ण और विष्णु के सहित अन्य बारह देवता अधिष्ठित होते हैं। अनन्त भगवान् के इस प्रतीक को विष्णु भगवान् की मूर्ति के साथ रखकर हवन किया जाता है। नैवेद्य के लिए पुल्लिग नाम वाले पकवान, जैसे रोट आदि रखे जाते हैं, तदनन्तर उस गांठ लगे धागे को दाहिने हाथ की भुजा में बाँध लिया जाता हैं। इससे वलवृद्धि और अर्निष्टों का उपशमन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस व्रत का माहात्म्य श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर को उस समय सुनाया था, जब वे जुए में सब कुछ हारने के बाद अपने भाइयों और द्रोपदी के साथ वनवासी जीवन बिता रहे थे। उस समय श्रीकृष्ण जब उनकी खोज-खबर लेने के लिए वहाँ गये तो स्वभावतः युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से उस महान् कष्ट एवं दुःख से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। इस पर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अनन्तदेव का माहात्म्य सुनाया और दुःख तथा कष्ट, से विमुक्त होने के लिए अनन्त भगवान् का व्रत करने के लिए कहा। श्रीकृष्ण ने यह भी कहा 'हे युधिष्ठिर, अनन्त मेरा ही दूसरा नाम है। इस दिन जो मेरी पूजा करता है उसके मैं सभी कषायों को साफ कर देता हूँ।'

'अनन्त इत्यहं पार्थ, मम रूपं निवोधय'

जन्माष्टमी

यह व्रत भाद्रपद की कृष्णा अष्टमी को होता है। यह अष्टमी, भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मतिथि होने के कारण इसको कृष्ण जन्माष्टमी भी कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म रात को रोहिणी नक्षत्र में हुआ था, स्मार्त लोगों का ऐसा विधान है।

इस महारात्री को बड़े उत्सव एवं पवित्रता से मनाया जाता है। उस रात को, पलंग पर विराजमान माता देवकी के सहित श्रीकृष्ण की पूजा और अन्य लौकिक मनोरंजनों द्वारा उनकी लीलाओं का अभिनय किया है। इसके साथ ही भजन-कीर्तन द्वारा श्रीकृष्ण का गुणानुगान करना और उनके माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। मन्दिरों तथा घरों पर आधा रात्रि के समय पंचामृत स्नान और विशेष रूप से सेवा-शृंगारादि का आयोजन कर इस उत्सव को मनाया जाता है। श्रीनाथद्वारा तथा सारे ब्रज में यह उत्सव बड़े धूम से संपन्न किया जाता है। वैष्णवधर्मानुयायी लोगों का यह सर्वश्रेष्ठ त्योहार है।

दूसरे दिन नवमी तिथि को प्रातःकाल गाय का पूजन तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मणों को भोजन करा के उन्हें दक्षिणा देकर संतुष्ट किया जाता है।

जन्माष्टमी व्रत के माहात्म्य में लिखा है कि जो व्यक्ति इस प्रकार श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का अनुष्ठान करता है उसको अपना भक्त जानकर श्रीकृष्ण उसकी हर तरह से रक्षा करते हैं।

भैया दूज या यम द्वितीया

कार्तिक सुदी द्वितीया और चैत्र बदी द्वितीया, इन दोनों तिथियों को भैया दूज के नाम से कहा जाता है। वर्ष की इन दोनों तिथियों पर बहिनें अपने भाइयों को विशेष रूप से आमंत्रित करती हैं।

इन तिथियों को घर की सफाई और घर का पूजन होता है। तदनन्तर स्वच्छ आसन पर बैठाकर बहिन, भाई का तिलक करने के उपरान्त उसको अच्छे-अच्छे पकवान खाने को देती है। बदले में भाई भेंटस्वरूप बहिन को अच्छी-अच्छी वस्तुएँ तथा रुपया देता है।

इस सम्बन्ध में बताया गया है कि कार्तिक की दूज को भाई का टीका हल्दी से और चैत्र की दूज को गुलाल से किया जाता है।

जो बहिनें भैया दूज के दिन अपने पतिघर या परदेश में होती हैं अपने भाई-भौजाई (यदि विवाहित हुआ तो) की प्रतिमायें बनाकर उनका पूजन करती हैं और उन्हीं को निमित्त मान कर दूसरी विधियों को सम्पन्न करती हैं।

इस तिथि को यमुनास्नान, यमराज की पूजा और भाई का आतिथ्य-सत्कार—ये तीन बातें मुख्य हैं।

भैया दूज से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा में कहा गया है कि इसी तिथि को यमुना अपने भाई यमराज से मिलने के लिए गयी थीं। अपनी बहिन पर प्रसन्न होकर यमराज ने उसको यह वरदान दिया था कि इस तिथि को जो मर्त्यलोकवासी यमुना में स्नान करेगा उसको यमलोक से छुटकारा मिल जायगा। अतएव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज भी मथुरा जी में इस तिथि को यमुना जी में स्नान करने के लिए लोग बड़ी संख्या में जमा होते हैं।

महा शिवरात्रि

फाल्गुन मास की कृष्णा त्रयोदशी को महा शिवरात्रि का उत्सव मनाया जाता है। जिस दिन अर्धरात्रि में चतुर्दशी का योग हो उस दिन व्रत करना चाहिए। यदि इस तिथि को रविवार या मंगलवार का संयोग पड़े तो श्रेष्ठ माना जाता है।

इस तिथि को भगवान् शंकर को निमित्त मान कर व्रत किया जाता है और विधानपूर्वक उनका पूजन-अर्चन किया जाता है। उसका विधान करते हुए लिखा गया है कि प्रातःकाल स्नान करने के उपरान्त जल से परिपूर्ण मिट्टी के घड़े में बेलपत्र, आक-धतूरे के फूल, मौलसरी और अक्षत आदि डालकर 'शिवपुराण' की कथा सुनी जाती है। दूसरे दिन सुबह जौ, तिल, खीर और बेलपत्र का हवन करके व्रत को समाप्त किया जाता है। शिवपूजन में बिल्वपत्र का मुख्य स्थान है। बिल्वपत्र का अग्रभाग अपनी ओर करके उसको उलटा अर्पण किये जाने का विधान है।

व्रत रखने की विधि के सम्बन्ध में कहा गया है कि त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन करके चतुर्दशी को पूरा उपवास करना चाहिए। काले तिलों से स्नान करके पुनः शिव का पूजन किये जाने का निर्देश है।

'लिंगपुराण' में महा शिवरात्रि व्रत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि अनजाने या जाने, किसी भी अवस्था में इस तिथि को जो व्यक्ति निराहार रहकर भगवान् शिव की कथा को सुनता हुआ जागरण करता है उसको भगवान् शंकर का अनुग्रह प्राप्त होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामनवमी

हिन्दू समाज में रामनवमी को बड़ा लोकप्रिय त्योहार माना जाता है। उसको आज राष्ट्रीय पर्व के रूप में सारे भारत के कोने-कोने में एक जैसे उत्साह से मनाया जाता है। वर्ष में दो बार नवरात्र होते हैं। एक तो आश्विन मास की शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होकर नवमी तक चलते हैं और दूसरे चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा से लेकर नवमी तक।

चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा की नवमी को ही रामनवमी कहते हैं। वैष्णवों के बीच उदयव्यापिनी नवमी को लिया जाता है और स्मार्तों के बीच मध्याह्नव्यापिनी नवमी को लिया जाता है। इस तिथि को सर्वतोभद्र मण्डल पर सोने की राम-सीता की प्रतिमा स्थापित करके उसका पूजन करना चाहिये।

इस तिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का जन्म हुआ था। अतः सब लोग दिन में उपवास करके रात को रामकथा सुनते तथा उत्सव मनाते हैं। दूसरे दिन दशमी तिथि को राम-पूजन के उपरान्त व्रत का पारायण होता है। व्रत-पारायण के बाद ब्रह्मभोज तथा दान-दक्षिणा आदि देने का विधान है।

प्रायः सभी मन्दिरों में चैत्र प्रतिपदा से ही रामायण की कथा होनी आरम्भ हो जाती है और नवमी तिथि तक बराबर होती रहती है।

भगवान् श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या में इस तिथि को बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें दूर-दूर के लोग एकत्र होते हैं और भगवान् राम के मन्दिर में उनका दर्शन करके अपने को धन्य समझते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library
3641
24
1.68

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh